ऊषा और अरुण

(प्रथम भाग)

मूल-लेखक

श्रीभानुप्रसाद मणिराय व्यास

प्रकाशक

एस्० एस्० मेहता एँड ब्रदर्स

अध्यक्ष

प्राचीन कवि-माला कार्यालय

पुस्तक-प्रकाशक, विक्रेता और स्टेशनर्स

बनारस सिटी

सजिल्द १।=)] सं० १९८६ वि० [अजिल्द १)

प्रकाशक का वक्तव्य

देश की परिस्थिति और समाज की दुर्दशा देखकर, एक ऐसी पुस्तक लिखवाकर प्रकाशित करने का बहुत दिनों से विचार था, जिसमें समाज की दुर्दशा का ठीक-ठीक चित्र खींचा गया हो और साथ ही उससे मुक्त होने का उपाय भी दिया हो। यह कार्य कहने में तो बहुत सरल प्रतीत होता है, पर इसे कार्य रूप में लाना बड़ा ही कठिन है। कारण, यह कार्य उसी की लेखनी या मस्तक से निकल सकता है, जो इसी की चिंता में रात-दिन लीन रहता हो। देश के नेताओं में गिने-गिनाए ही लोग ऐसे हैं, जो वास्तव में देश की परिस्थिति सुधारने की चेष्टा करने में लीन हैं। शेष सभी कोरे व्याख्यान झाड़नेवाले हैं। व्याख्यान झाड़ना दूसरी बात है और देश का सुधार करना दूसरी। स्वराज्य, स्वराज्य चिल्लाने या गला फाड़कर व्याख्यान देने से नहीं मिल सकता। स्वराज्य का अर्थ है, वह राज्य जिसमें प्रजा सुखी हो। वह राज्य स्वराज्य कदापि भी नहीं कहा जा सकता, जिसमें प्रजा भूख और महामारी की शिकार बनी रहे। हमें यदि स्वराज्य भी मिल जाय और हमारी सामाजिक परिस्थिति ज्यों-की-त्यों बनी रहे, तो हम कदापि उसे क़ायम नहीं रख सकते। इसी कारण हमारा मुख्य ध्येय समाज-सुधार का होना चाहिए। समाज-सुधार पर ही हमारे देश और जाति का उत्कर्ष निर्भर है।

अतः यह कार्य इतना कठिन दिखाई पड़ने लगा कि किसके द्वारा यह पूरा कराया जाय। इसी चिंता में हम लोग लगे थे कि हमारी मित्र-मंडली के एक सज्जन ने 'ऊषा अने अरुण आवशे त्यारेज सूर्योदय थशे' शीर्षक पुस्तक की निम्नलिखित समालोचनाएँ अवलोकनार्थ हमारे पास भेज दीं।

समालोचनाएँ

माडर्न रिव्यू—

The purport of the story is that the uplift of our country would come only when women like Usha and men like Aruna would work hand in hand.

The plot is well developed and the life of Murlis (Dancing girls attached to temples) of South India is well depicted. One such Murli is reclaimed by Aruna and she feels grateful to him, till the end of her life. The book is creditable performance for one living so for away from Gujrat.

[Issue of Feb. 1924]

\+ + + +

साहित्य—

आधुनिक प्रवृत्तियों पर पूर्ण विचार कर लेखक ने पढ़ने योग्य उपन्यास की रचना की है और बहुत-से सुंदर तत्त्वों को अच्छे ढंग पर, भावपूर्ण भाषा में सजाया है।

[जनवरी १९२४]

\+ + + +

गुणसुंदरी—

पुस्तक में बहुत-सी घटनाएँ सत्य और बहुत-सी कल्पित हैं। (गुजराती साहित्य में) श्रीयुत गोवर्धनराम के सरस्वतीचंद्र की रचना के बाद, जान या अनजान में उसके अनेकों अनुकरण हुए हैं।

इस पुस्तक में भी सरस्वतीचंद्र के बहुत-से अंश दिखाई पड़ते हैं। कथानक का नायक किशोर धनी का पुत्र है और घर छोड़कर चला जाता है। सरस्वतीचंद्र की तरह इसमें भी देशी राज्यों की खटपट और सरकारी कर्मचारियों की अनीति का चित्र खींचने का प्रयत्न किया गया है। कथानक पढ़ने योग्य है। भाषा भी सरल है और समाज की बुराई और अच्छाई दोनों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है। आदर्श देश-भक्त कैसा होना चाहिए, इसपर लेखक ने अपने विचार कथानायक द्वारा दिग्दर्शित कराए हैं।

[अगस्त १९२४]

\+ \+ \+ \+

हिंदुस्तान—

आत्म-भोग और सेवा-वृत्ति के उत्कृष्ट उदाहरण भेंट किए गए हैं और कलुषित वातावरण में फँसे हुओं पर विशुद्ध चरित्र का कैसी सुंदर छाप पड़ सकती है, इसका अद्भुत चित्रण किया गया है।

[जनवरी १९२४]

\+ \+ \+ \+

समाज-जीवन—

श्रीयुत भानुजी की क़लम से लिखा हुआ यह उपन्यास हाल ही में प्रकाशित हुआ है। जो तरुण गुजरात को सेवामार्ग द्वारा अपनी समाज की उन्नति करने में सहायक होगा। इसमें शंका नहीं है··· कि दो घड़ी मौज लेने के लिये यह उपन्यास नहीं है, परंतु वर्त्तमानयुग-धर्म के फ़रमान हैं। लेखक ने विशुद्ध प्रेम की महत्ता बताते हुए ऊँचे-से-ऊँचे आर्य-आदर्शों को पाठकों पर प्रकट करने की अपनी शक्ति इस पुस्तक में पूर्ण की है। आधुनिक राजनैतिक हलचल, उसमें चलते हुए दंभ, प्रजा की निर्बलता, धनियों की स्वार्थपरायण कायरवृत्ति और मज़दूर और मालिकों के बीच में जलता हुआ ज्वालामुखी—इन सब आवश्यक प्रश्नों की चर्चा की है। साथ-ही-साथ लेखक ने अरुण और उसकी

दो प्रेमिकाओं के निःस्वार्थ प्रेम का जो रम्य और मोहक चित्र खींचा है, वह किसी भी हृदय को स्पर्श कर सके, ऐसा है। भानुजी पतितोद्धार वेश्याओं के उद्धार को भी नहीं भूले हैं। समाज को घड़ी भर भड़काकर विचार-सागर में मस्त करने का विचार होने पर भी पतितोद्धार प्रभु को प्रिय है, यह उद्देश्य जाननेवाले को यह पसंद आए बिना नहीं रह सकता, ऐसी हमारी धारणा है।

[मार्च सन १९२४]

× × × × × ×

आलोचनाएँ पढ़कर पुस्तक पढ़ने की तीव्र उत्कंठा हुई। पुस्तक की प्रति भेजने और उसका अनुवाद कराकर प्रकाशित करने के संबंध में रा० रा० भानुप्रसाद मणिराय व्यास की सेवा में पत्र भेजा गया। पत्र के उत्तर में उन्होंने पुस्तक की एक प्रति और अनुवाद कराकर प्रकाशित करने की अनुमति भेज दी। पुस्तक पढ़ी, उसमें काफ़ी आनंद मिला। दो बार पढ़ी, तीन बार पढ़ी; फिर भी उसके पढ़ने की उत्कंठा ज्यों-की-त्यों बनी ही रही। कारण, अपने विचारों के अनुसार ही पुस्तक प्राप्त हो गई। समय और देश की परिस्थिति का सच्चा चित्र मिल गया। शीघ्र-से-शीघ्र अनुवादित कराकर इसे प्रकाशित करने का विचार तीव्र होने लगा। अनुवाद कराया गया, जिसमें लेखक के भावों का ठीक-ठीक अनुवाद न होने और संशोधन की काफ़ी आवश्यकता रहने के कारण शीघ्र प्रकाशित करने में बाधा पड़ी। अतः शीघ्र ही उसके संशोधन का कार्य प्रारंभ कर दिया गया। जितनी कापियाँ संशोधित होती गईं, प्रेस में भेजी जाने लगीं।

पहले इसके तीनों भागों को एक ही जिल्द में छपवाकर प्रकाशित करने का विचार था। पर मूल्य बढ़ जाने की आशंका से इसके खंड-खंड अलग-अलग कर दिए गए। पुस्तक के प्रत्येक

भाग में घटना-क्रम भिन्न-भिन्न होने के कारण पाठकों को किसी प्रकार की दिक्कत पड़ने की आशंका तो थी ही नहीं, अतः पुस्तक के प्रत्येक भाग को अलग-अलग पुस्तकाकार तैयार कराना ही निश्चित किया गया। प्रत्येक व्यक्ति इस पुस्तक की एक-एक प्रति अवश्य मँगवाकर स्वयं पढ़ेंगे और अपने आश्रितों को भी पढ़कर सुनाएँगे। इस पवित्र पुस्तक का अधिक-से-अधिक प्रचार कराना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है।

५७ सूतटोला-काशी
दिपावली सं० १९८६ वि०

उमाशंकर मेहता

मूल-लेखक के दो शब्द

प्रस्तावना अर्थात् पुस्तक का उद्देश्य, पुस्तक में आए हुए पात्रों की कार्य-कुशलता और उसमें वर्णन किए हुए भिन्न-भिन्न रसों का दिग्दर्शन। पुस्तक पढ़ने के पूर्व पाठक प्रस्तावना पढ़कर, उसके संबंध में अपनी राय क़ायम करते हैं। कभी-कभी दर्शक भी उसी पर से पुस्तक को देखते हैं। फिर यदि वही प्रस्तावना लेखक स्वयं लिखे, तो मेरी समझ के अनुसार पात्रोंकी उच्चता या अधमता और कौन रस किस अंश तक उच्च या निकृष्ट रीति से लिखा गया है, इसपर लिखने का उसे अधिकार ही नहीं है। क्योंकि पात्रों की योजना करनेवाला तो वही स्वयं होता है। फिर उसकी प्रशंशा या निंदा करनेवाला वह कैसे बन सकता है। ऐसा करना मेरी बुद्धि के अनुसार अनुचित है। कभी-कभी प्रस्तावना किसी स्नेही की लिखी हुई देखने में आती हैं, जो कि उसी श्रेणी की गिनी जानी चाहिए। यदि वह तटस्थ रीति से लिखी गई हो, तो उसमें किसी प्रकार की आपत्ति नहीं है, परंतु स्नेही का स्नेह पक्षपात किए विना नहीं रह सकता। इसी कारण यहाँ पुस्तक में आए हुए पात्रों और रसों के संबंध में विशेष विवेचना करने की इच्छा नहीं है। परंतु पाठकों को इतना तो बता देना आवश्यक प्रतीत होता है कि इस पुस्तक में वर्णित कुछ घटनाएँ सत्य हैं और कुछ कल्पित। इस कारण इस पुस्तक को नवलकथा (नवीन कल्पित कथा) कहना चाहिए या जीर्ण कथा (सत्य घटनाओं का समावेश होने के कारण जीर्ण कथा) इसका निर्णय स्वयं पाठक कर लेवें।

मद्रास
चैत्र-शुक्ल १ सं० १९७९

भानु

॥ श्रीः ॥

[भाग पहला]

पहला परिच्छेद

भारत है हमारा देश

हिंदू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी, पारसी तथा हिंद के स्वदेश-प्रेमी हिंदुस्थान में रहनेवाले भारतवासी मित्रो ! जीवन और मरण के लिये कोई सामान्य निशान नियत करने की जरूरत है।

(महात्माजी)

"अरुण ! अरुण !! जल्द आओ, देखो ये स्वयंसेवक कैसे उत्साह के साथ चले आ रहे हैं। सुना है, कि भारत के प्रतिभाशाली पुत्र देशबंधु आनेवाले हैं।" विनोदकांत ने दूसरी मंज़िल के बरामदे से तमाशा देखते हुए ये बातें कहीं। बरामदे के

पास पहुँचते ही पहले अरुण के कानों में अमृत की वर्षा हुई। उसे—'महात्मा गांधी की जय! देशबंधु दास की जय!! हिंदू-मुसलमान की जय!!!' की प्रबल पुकार सुनाई पड़ने लगी। अरुण जल्दी से बरामदे में आ पहुँचा। वहाँ उसने देखा कि कितने ही बड़े-बड़े स्वयंसेवक भारत-माता के वीर सैनिक अपनी-अपनी ऊँचाई के चार-चार साथियों की क़तार बाँधे चले आ रहे हैं। प्रत्येक सैनिक की पोशाक केवल सफ़ेद कपड़े की है। उसपर पीले, लाल और नीले रंग के पट्टे लटक रहे हैं। उन पट्टों के ऊपर—'विश्वचालक विभु के लिये,' 'भारत-माता के लिये,' 'जन-समाज के लिये' इत्यादि वाक्यों के साथ-साथ उन सैनिकों के नंबर दिखाई दे रहे हैं, सबकी छातियों पर लाल और नीले रंग के बैजों में सूर्य, चंद्र तथा भारत के भिन्न-भिन्न धर्म के माननेवालों को अपने कच्चे सूत के तार में बाँधनेवाले श्रीकृष्ण भगवान के सुदर्शन-चक्र के समान 'चरखा' दिखाई दे रहा है। सेना के बीचोबीच एक वीर के हाथ में शुद्ध खादी के कपड़े पर रंग-बिरंगे डोरे, और जरी के तारों का बना हुआ राष्ट्रीय झंडा फहरा रहा है। इस झंडे में भारत के प्रत्येक धार्मिक चिह्नों के साथ ही साथ चरखा-चक्र भी बीच में बिराज रहा है, सैनिक लोग वीर रस से मतवाले हो, भारतीय जातीय गीत अलाप रहे हैं। नगर के स्त्री-पुरुष अपना-अपना काम छोड़, हँसते मुख और अमृतमयी दृष्टि से इन स्वयंसेवकों की सैन्य का स्वागत करते, भावी विजय के झंडे का दर्शन करते और भारतीय वीर-रस के संगीत पर अपने-अपने हृदय की धड़कन से ताल दे रहे हैं। याद हो या न हो, लोगों के मुख से उस वीर-संगीत के अस्फुट शब्द

निकल ही जाते हैं। कितने ही बालक जोश में आकर इस संगीत को अपने तोतले शब्दों में ललकारते हुए स्वयंसेवकों की सैन्य के पीछे-पीछे दौड़ रहे हैं। इसी वीर-संगीत की ध्वनि विनोद तथा अरुण के हृदय में भी गूंजने लगी। धीरे-धीरे सैन्य निगाहों की ओट हो जाने पर विनोद तथा अरुण बरामदा छोड़ अपनी-अपनी कुर्सी पर बैठ गए। अरुण किसी विचार में डूब गया। विनोद के हृदय में मँडराते हुए वीर-संगीत का पहला पद मुँह से निकल पड़ा:—

"हम बच्चे हैं भारत के, औ भारत है हमारा देश।"

"व्यर्थ! यह सब व्यर्थ।" अरुण के भी मुख से टूटे-फूटे शब्द निकल पड़े। यह सुन कर विनोद विचार में पड़ गया, कि क्या व्यर्थ? वीर-संगीत या स्वयंसेवक?"

उसने उसी समय अरुण से पूछा—"क्या व्यर्थ है, अरुण! किसे व्यर्थ बताते हो? वीर-संगीत को या स्वयंसेवकों को?"

अरुण—"सब व्यर्थ है। जहाँ स्वयंसेवक का उद्देश्य न हो, वहाँ वीर-संगीत से क्या लाभ?"

विनोद—"ऐसा क्या कहते हो अरुण! स्वयं सेवा का कोई उद्देश्य ही नहीं? बिना उद्देश्य की स्वयं सेवा कैसी? ऐसा हो ही नहीं सकता; समाज-सेवा और देश-सेवा ही इसका मुख्य उद्देश्य है। तब नाहक की शंका क्यों करते हो?"

अरुण—"कहने को देश-सेवा है; किंतु सच्ची देश-सेवा तो समाज-सेवा में समाई हुई है। तुम्हारे इन स्वयंसेवकों में समाज-सेवक हैं ही कहाँ?"

केवल क्षण भर की उत्तेजना में हृदय को पागल बना वीर-

संगीत ललकारने या खादी पहनकर स्वयंसेवक का अभिमान करने और छाती फुलाकर चलने में कौनसी समाज-सेवा रक्खी है ?"

विनोद-" अरुण ! अरुण !! आज तुम्हें हो क्या गया है ? काम-काज छोड़कर, अपना सुख त्यागकर; असहयोग के यज्ञ में आत्मबलिदान करते हुए हज़ारों की संख्या में जेल जाना—नौकरशाही के सामने निडर होकर खड़े होना; इन सबको क्या तुम क्षण भर का उभरा हुआ योग बताते हो ? हज़ारों, बल्कि लाखों की संपत्ति पर लात मार, माननीय ख़िताब और उपाधियों को छोड़, नौकरशाही के खिलाफ़ होकर बड़ी-बड़ी तकलीफ़ें उठाना क्या क्षण भर के जोश से हो सकता है ? क्या महात्माजी के आदर्श को तुम अमान्य, अग्राह्य, अशक्य और अनावश्यक समझ रहे हो ? "

अरुण-" विनोद ! धीरज धरो, उतावले होकर आक्षेप न करो। आदर्श उच्च है, उत्तम है; किंतु समझदारों के लिये। क्या तुम समझते हो, कि खादी पहननेवाले सभी मनुष्य इस आदर्श को अच्छी तरह समझते हैं ? समाज के नेता कहलाने वालों में इस अपवाद के अतिरिक्त तुमने उनके जीवन के अन्यान्य कार्यों को भी देखा है ? कभी तुमने इसपर विचार भी किया है ! हजारों रुपए धर्मार्थ फंड में देनेवाले दानवीर कहलाते हैं; किंतु वे ग़रीब, भूखों मरते, चिथड़े लगाए हुए मनुष्यों को एक पाई भी नहीं देते; ऊपर से इन लोगों को धक्के दिलवाते क्या तुमने नहीं देखा है ? क्या तुम यह नहीं जानते, कि 'हमारा देश, हमारा देश' के बहाने व्याख्यान के मंच पर हाथों उछलनेवाले ग़रीब

और भ्रातृभाव दिखानेवाले श्रीमान लोग अपने गरीब नौकर-चाकरों पर कैसा अन्याय करते हैं ? पतिता रमणियों पर धिक्कार देनेवाले अपनी स्त्रियों के सतीत्व नष्ट करने में कैसा लोहे-चुंबक-सा कार्य करते हैं, उसे क्या तुमने नहीं देखा है ? विनोद ! यदि कपड़े और बातों से देश का उद्धार होता हो, तो अब तक कभी हो गया होता । अब बातों का ज़माना जाता रहा, कर्त्तव्य का ज़माना आगया है ।"

विनोद—" अरुण ! मैं भी तो यही कहता हूँ, कि यह कर्त्तव्य का ज़माना है और अब के नेता तथा स्वयंसेवक इस बात को प्रमाणित भी कर रहे हैं । तुम्हारे कहने के अनुसार कितनों ही का चरित्र उच्च नहीं है । किंतु इससे हमें क्या ?"

अरुण—" विनोद ! इतना तो तुम मानते हो कि राष्ट्र के उद्धार से देश का उद्धार है"

विनोद—" बेशक़ !"

अरुण—" और समाज के उद्धार से राष्ट्र का उद्धार है ।"

विनोद—" अवश्य !"

अरुण—" और व्यक्तिगत उद्धार से समाज का उद्धार है ?"

विनोद—" हाँ—हाँ !"

अरुण—" तब हम यह कह सकते हैं कि, हमारे समाज में किसी-किसी वर्ण के लोगों में नाश का बीज बोया गया है; बीजों को नाश करने के लिये अंकुर भी निकल आए हैं—समाज के उस सड़े हुए अंग का उद्धार करने के लिये कितने देश-भक्त वैद्यराज तैयार हुए हैं ? तुमने स्वयंसेवकों को केवल सफ़ेद कपड़े पहनने, क़ायदे के साथ सविनय भंग करने या विदेशी वस्त्र न पहनने का उपदेश

देने तथा चरखा चलाना सिखाने के अतिरिक्त कोई और समाज सेवा करते देखा है ? निकम्मे दुखियों को काम में लगाते, रोगियों को दवा पहुँचाते, बदचलन और निराधार निःसहायकों की सहायता करते तुमने कितने स्वयंसेवकों को देखा है ? ये सब हृदय के साथ काम करनेवाले हैं सही, किंतु इनके काम का सबसे बड़ा हिस्सा दूध के उबाल की तरह है।"

विनोद–"तुम जैसा कहते हो वैसा ही सही; किंतु इसका उपाय ?"

अरुण–"उपाय ? उसका उपाय यह है, कि खुद कमर कस कर स्वयंसेवकों का कार्य करना, उन्हें कर्मक्षेत्र में लाने के लिये अपने जीवन को अर्पण करना और अपने भाइयों के उद्धार का उपाय सोचकर वैसा ही कार्य करना है।"

विनोद–"पर हम दो आदमियों से क्या होगा ? भारत के तीस करोड़ लोगों में हम दो ही हैं।"

अरुण–"जो सत्य है, वह जान-अनजान में कहा ही जायगा। इतने बड़े-बड़े स्वयंसेवकों के होते हुए भी तुम दो ही क्यों बताते हो ? इन लोगों के मन में अभी उनका सच्चा कर्त्तव्य जमा नहीं है। हम लोग यदि हृदय से कर्मक्षेत्र में प्रवेश करेंगे, तो हम दो के बदले दो लाख हो जाएँगे। हिम्मत क्यों हारते हो ? तुम्हारे जैसे कितने ही निराश हृदयवालों को हिम्मत बँध जायगी; अपनी कर्त्तव्य-परायणता के झंडे के नीचे कितने ही लोग इकट्ठे हो जाएँगे।"

गुजरात के पाट नगर—राज नगर में रिचारोड के एक मकान में ऊपर लिखी बातें हो रही हैं। यहाँ अपने पाठकों को इन दोनों का परिचय देना बहुत जरूरी है।

जिस मकान में ये दोनों मनुष्य बैठे बातें करते हैं, वह इंडियन इंश्योरेंस कंपनी का मकान है । विनोद और अरुण इसमें कर्मचारी की तरह काम करते हैं । विनोद एक धनवान् कायस्थ का इकलौता बेटा है । प्रीवियस परीक्षा पास करने के बाद उसके पिता ने नौकरी कर स्वतंत्र जीवन बिताने में उसे लगा दिया था । बीमा कंपनी में नौकरी करते उसे अभी कुछ ही दिन हुए हैं । अरुण से इसकी बड़ी मित्रता है । उसके स्वतंत्र विचारों को देखकर भी इसके हृदय में विकास न हुआ था । अभी इसका विवाह भी न हुआ था । वर्त्तमान आँदोलन का इसे बहुत ही शौक था । देश के हलचल का समाचार पढ़ने का बहुत ही शौक था । कभी-कभी यह देश के कामों में भाग लेने का भी विचार करता था, किंतु उस योग्य साथी के न मिलने के अभाव से उसका विचार मन में ही दबकर रह जाता था । अरुण से मित्रता होने के बाद से इसके विचारों में कुछ विकास होने लगा था; इसी से उसके साथ इसे कुछ आनंद भी मिलता था ।

अरुण कौन था और कहाँ से आया, यह कोई न जानता था; यह हर एक आदमी से बहुत ही सहज में मिलता था; किंतु अपनी बातों को हमेशा छिपाए रहता था । इसी कारण उसके बर्त्ताव बहुत ही गूढ़ जान पड़ते थे । कुछ दिन हुए, अरुण बीमा कंपनी में खास कर्मचारी के रूप में नियुक्त हुआ था । उसकी पढ़ाई-लिखाई के बारे में यदि कोई पूछता, तो वह जवाब देता था,—“ मुझे केवल लिखने–पढ़ने भर का भाषा-ज्ञान है । ” किंतु उसमें गुजराती, मराठी, हिंदी, बँगला, तेलगू, तामिल,

कनेडी, अँगरेज़ी, फ्रेंच तथा जर्मन भाषाओं का अच्छा ज्ञान जान पड़ता था। उसका स्वभाव सरल, मिलनसार, हँस-मुख, दृढ़ कर्त्तव्य और दयालु था। पराया दुःख देखकर उसका हृदय सदा पिघल जाया करता था। अब तक किसी को यह भी पता न लगा था कि वह कहाँ रहता और कहाँ खाता था। वह किसी दिन भी किसी के सामने अपने हृदय की बातें न खोलता था। वह हमेशा किसी-न-किसी काम या विचार में मग्न रहता था। किंतु उसके काम और विचार को कोई समझ नहीं सकता था। जब कभी वह अकेले में बैठता, उस समय उसके चेहरे पर गंभीरता तथा उदासीनता छा जाती थी।

अरुण की बातें सुनकर विनोद में कुछ उत्साह दिखाई दिया। उसके मन में इस बात का विश्वास हो गया कि 'हम दो दो लाख बन सकते हैं।" इसी विचार की धुन में वह अरुण के साथ आफ़िस से बाहर निकला। राह चलते-चलते भी विनोद के हृदय में उस वीर-संगीत के शब्द गूंज रहे थे। उसके लिये राह की वायु भी वीर-संगीतमयी हो रही थी। अरुण मानो उसके हृदय के तमाशे प्रत्यक्ष देखने के लिये तेज निगाहों से उसकी ओर देख रहा था। किंतु विनोद को इसका ख़याल भी न था। उसके हृदय में केवल—"हम बच्चे हैं भारत के, औ भारत है हमारा देश" शब्द गूंज रहे थे। प्रिय पाठक! क्या भारतीय वीरों के हृदय में इन शब्दों की गूँज नहीं हुआ करती?

दूसरा परिच्छेद

निष्ठुर बने हो कैसे ?

शुद्ध प्रेम में एकता है, भिन्नता कहाँ ?

" वाह वा ! क्या खूब !! अच्छी चीज कही । होने दो, होने दो " ।

राजनगर के बगल की एक गली के दो मंज़िले एक सुंदर मकान के पहले मरातिम के दीवानखाने में पाँच युवक गद्दी मसनद से टिके हुए बैठे हैं । शाम के पाँच बजने का समय है । दीवानखाने की सजावट आज देखने ही लायक थी । मख़मल का ग़लीचा, मख़मल की खोली चढ़ी गद्दी-तकिया, दीवार में बड़े-बड़े आईने, रंग-बिरंगी दिल को खींचने वाली तस्वीरें, झाड़-फानूस खिड़की और दरवाज़ों पर मोती की झालर तथा कामदानी परदे, सादे लेकिन ख़ूबसूरत फ़रनीचर क़ायदे के साथ रक्खे हुए हैं । सामने सारंगी और तबले वाले बैठे हैं । साजिंदों के बीच में पैर मोड़कर बीस साल की एक युवती तान पर तान मारती और आलाप के साथ गा रही है । यह युवती बनारसी नीलकंठी रंग की वेश्या-साड़ी पहने हुए है । उसके अंग पर सफ़ेद रेशमी ख़ूबसूरत चोली कसी हुई है । कान में हीरे की एयरिंग झूम रही है । कर्नाटकी चलन के मुताबिक उसकी नाक में दोनों तरफ़ चुन्नी के जड़ाव की कील शोभा दे रही है । हाथ में सोने की पतली पतली नाज़ुक चूड़ियों के बीच-बीच में रेशमी गुलाबी रंग की

एक-एक चूड़ी पड़ी हुई है। कर्नाटकी ढंग से साड़ी पहनने की वजह से खुले हुए सिर पर जूही के फूल से गुथी अर्द्ध गोलाकार वेणी में चंपा के सुंदर पीले-पीले फूल गुंथे हुए हैं। इन सब ज़ेवरों से उसके गोरे और भरावदार सुडौल अंग की शोभा मनोहर हो गई है। मामूली इने-गिने ज़ेवरों के पहने हुए होने पर भी इसके रूप की शोभा सौगुनी हो रही है; इसके चेहरे पर एक अनुपम शोभा दिखाई दे रही है। उसकी मस्त और बड़ी-बड़ी आँखें गाना सुननेवालों पर बार-बार मदभरे कटाक्ष के कुमकुमें चला रही हैं। गाने के आलाप के साथ-साथ भाव भी खुल कर खेल रहे हैं। सुननेवाले स्थिर हो, उसके चेहरे की शोभा का अमृत पीते हुए टकटकी बाँधे, उसी की ओर देख रहे हैं।

"बतला दो कोई इस दुनियाँ में ज़र से बढ़के चीज़।
चीज़, बतला दो इस दुनियाँ में ज़र से बढ़ के चीज़॥"

"वाह वा! क्या खूब!! अच्छी चीज़ कही। होने दो।" सुनने वालों में तीस वर्ष के रमणलाल नामक एक युवक ने ये शब्द कहे। गाना आगे चला—तान पलटे जाने लगे।

"ज़र से...बढ़ के ची...ज़, बालम! ज़र से...बढ़ के ची...ज़।
ज़र से...बढ़ के ची...ज़, बालम! ज़र से...बढ़ के ची...ज़।
हाय सैयाँ! ज़र से बढ़के...चीज़—
प्यारे! ज़र से...बढ़के ची...ज़।
चीज़, बतला दो...कोई इस...दुनियाँ में ज़र से बढ़के चीज़।"

सुननेवाले संगीत से मतवाले होकर अपनी जाँघों पर हाथ से ताल देते हुए झूमने लगे। तबलची ने तरंग पर तरंग लेते हुए रंग जमा दिया। सारंगी और मजीरे वालों ने सिर हिला-हिला

कर तारीफ़ के पुल बाँध कर गानेवाली को आगे बढ़ने का मौका दिया:—

" साधु-संत फ़कीरो देखो—
साधु-संत फ़की...रो देखो...देखो...धनी अजीज़ ।
साधु-संत फ़की...रो देखो...देखो...धनी अजीज़ ॥
ज़र के आगे रूप गुण विद्या;
ज़र के आगे रूप, गुण, विद्या, सब हैं बस नाचीज़ ।
चीज़, बतला दो कोई इस दुनियाँ में ज़र से बढ़ के चीज़॥
बतलादो कोई इस दुनियाँ में ज़र से बढ़के चीज़ ॥
नाचीज़ ! नाचीज़ !! नाचीज़ !!! "
" वाहवा ! "
" सच में, नाचीज़ ! नाचीज़ !! "

सुनने वाले एक के बाद एक आनंद के मारे बोल उठे । गाने की मेहनत से थक गई हो अथवा सुनने वालों को उपदेश देने का अभिमान आ गया हो—वह वेश्या अपनी साड़ी के अँचल से अपने को हवा झलती, अपने उन्नत उरोजों को ऊँचा करती हुई तिरछी निगाहों से उन युवकों के हृदय को बेधने लगी ।

रमणलाल ने कहा,—" वाह गुलशन ! आज तो तुमने हद कर दी । "

गुलशन—" यह कौनसी चीज़ है महाशय ! उस्तादजी को इससे भी अच्छी-अच्छी चीज़ें याद हैं । मगर मुझ कमनसीब को वह सब चीज़ें आती ही नहीं । "

यशवंतराव बोल उठा—" तब तुम सीख क्यों नहीं लेतीं ? "

गुलशन ने आँखें नचाकर हाथ का इशारा देते हुए कहा—

" इसके लिये भी उसी पहली चीज़ की जरूरत है । "

नटवरलाल ने पूछा,—" वह पहली चीज़ कौन ? "

गुलशन—" वही ज़र, बिना रुपए के उस्ताद नहीं मिलते । "

गुलशन का जवाब सुनकर सब चुप रह गए । क्षणभर बाद रमणलाल ने कहा—

" कितने रुपयों की जरूरत है ? "

गुलशन—" यही, कोई पच्चीस रुपए महीने की । लेकिन सालों सीखने पर भी यह विद्या पूरी नहीं होती । "

" कोई हर्ज की बात नहीं; यह आज का इनाम लो " यह कहकर रमणलाल ने सौ रुपए का एक नोट फेंक दिया। इसके बाद सब तरफ़ से दस-बीस बरसने लगे, देखते-देखते गुलशन के आगे एक सौ साठ की रकम पहुँच गई । केवल एक आदमी ने ही कुछ भी न दिया था । यह वही अरुण था, उसकी ओर देखकर रमण-लाल ने कहा,—" अरुण ! मजलिस में बैठकर इस तरह मुँह फेरना ठीक नहीं, तुम्हें भी कुछ देना चाहिए । "

अरुण ने जवाब दिया—" लेकिन आज मैं अपना मनी-बेग भूल गया हूँ । अभी फिर लौटकर दे जाऊँगा । "

रमणलाल ने गुलशन की ओर देखकर कहा—" गुलशन, तुम्हारे गाने की तालीम के लिये बहुत जल्द मैं तुम्हें पाँच सौ रुपए दूंगा; बाद को देखा जायगा । "

गुलशन—" अजी नहीं सरकार ! आप हर महीने पचास रुपए दे दिया कीजिए । मुझे इतने रुपए दीजिएगा, तो सब खर्च हो जाएँगे । क्योंकि यह लौंडी बिलकुल ही बेवकूफ़ है । "

यशवंतराव—" ख़र्च हो ही जायगा, तो क्या ? ख़ुदा फिर देगा । "

रमणलाल—" और क्या, मेरे पास रहने से तो और भी जल्द ख़र्च हो जायगा । इससे तो अच्छा है कि, तुम अपने ही पास रक्खे रहो । "

इस सोने की ईंट को कसौटी पर लाने का जाल बिछाते हुए गुलशन ने कहा—" जैसी मर्ज़ी ! लेकिन मेरे तालीम का इम्तिहान लेने को आपको हर आठवें दिन मेरे यहाँ जरूर आना पड़ेगा । "

रमणलाल ने बासी दही का-सा मुँह बनाकर कहा—" आठ दिन में एक दिन । "

गुलशन ने कहा—" अगर आप हर रोज़ आएँ, तो इस लौंडी पर बड़ा ही एहसान होगा । जरूर आइए ! जरूर आइए !! "

रमणलाल ने मूंछ पर हाथ फ़ेरते हुए कहा—" ठीक है, ठीक है; तुम्हारी इच्छा है, तो मैं जरूर आऊंगा । "

सब लोग उठकर चले गए । गुलशन भी लोगों को सीढ़ी-तक पहुँच कर लौटी और अपनी गद्दी पर लेट गई । सिवा सारंगी वाले के बाकी सब साजिंदे भी चले गए ।

तब उस्तादजी बोले—" उठ बेटी ! ये रुपए उठाकर संदूक में रख ले । उस पाक परवरदिगार का शुक्रिया अदाकर कि ऐसे ही बेवकूफ़ों को हमेशा वे तेरे घर भेजा करें । "

कुछ निराशा भरे हुए तिरस्कार के साथ गुलशन ने कहा—" जहन्नुम में जायँ ऐसे रुपए । "

" तौबा ! तौबा !! तौबा !!! जान पड़ता है, आज मिजाज़ दुरुस्त नहीं। खुदा तुम्हारे दिन को राहत बख्शे, मैं जाता हूँ। " यह कहते हुए दाढ़ी पर हाथ फेरते-फेरते उस्तादजी चले गए।

गुलशन आँखें फाड़-फाड़ कर रुपयों की ओर देखने लगी। उसके हर अंग से निराशा झलक रही थी। उसका क्षणभर पहले का खिला हुआ चेहरा बिलकुल मुरझा गया। शौकीनों का मन लुभाने या धन हरण करनेवाले धन के प्रति जैसा असंतोष दिखाते हैं, या पराया धन हरण करने से जैसा पछतावा होता है, वैसा ही भाव गुलशन के चेहरे पर दिखाई देने लगा। गहरी नींद से जागने की तरह वह गद्दे से उठकर बड़े शीशे के सामने जाकर आप-ही-आप अपने को घूर-घूर कर देखने लगी।

" या खुदा ! " एक ठंडी साँस लेने के बाद वह आप-ही-आप बड़बड़ाने लगी—" इस हुस्न पर लोगों के पागल होने में शक ही क्या है ? अहा ! मैं चाहूँ, तो सारे राजनगर की दौलत को लूट लूँ; लेकिन इससे क्या फ़ायदा ? यह भी खुदा की शान है, जो मुझ जैसी कमीनी औरत को ऐसा हुस्न देते हैं। यह सुफ़ेद चमड़ा; यह गोरे-गोरे गाल; इन पतले-पतले होंठों पर पान की लाली, यह नथ से नथी हुई नाक और यह कटीली जहरीली आँख—बड़े-बड़े गुमानियों का ग़रूर चूर करने को काफ़ी हैं। लेकिन इस हुस्न से मुझे क्या फ़ायदा ? न किसी दिन आराम है और न दिल को क़रार ही ! न पैसा ही मुझे प्यार करता है और न मैं पैसे को ही चाहती हूँ। हाय नसीब ! कैसी बेइज्ज़ती से भरी मेरी भी ज़िंदगी है। हुस्न की आग में जलनेवाले हैवान मेरे हुस्न पर मरते हैं, मेरी इज्ज़त करते हैं। लेकिन जो सचमुच इज्ज़तदार हैं,

वे मुझ से नफ़रत करते हैं। गरीब मुफ़लिस बेचारे पैसे के लिये दर-दर मारे-मारे फिरते हैं और मेरे जरा से आँख के इशारे पर सैकड़ों रुपए बरसते हैं। लेकिन उन रुपयों से मुझे सुख मिलता है? मेरे चाहनेवाले हज़ारों हैं, लेकिन इस चाह से मुझे क्या सुख? मेरे पीछे-पीछे घूमनेवाले हज़ारों हैं, लेकिन मेरा दिल अकेला ही तड़प-तड़प कर मरा करता है। जिसपर मैं मरती हूँ, वह—उफ़! उफ़!!"

बकते बकते गुलशन वहीं बैठ गई, इसके बाद दोनों हाथों से अपना मुँह छिपाकर रोने लगी। उसके सुंदर गुलाबी गाल आँसुओं से तर हो गए। आँखें लाल-लाल हो गईं। साँस जोर-जोर से चलने लगे। क्षण भर बाद बड़ी तेजी के साथ उठकर उसने अपने सब ज़ेवर उतार डाले। इसके बाद वेश्या-साड़ी उतार कर एक काले किनारे की धोती पहन मसहरी पर लेट कर धीरे-धीरे गाने लगी:—

दिलदार यार प्यारे, निष्ठुर बने हो कैसे।
दिल को चुराके न्यारे, निष्ठुर बने हो कैसे॥
सुख छीनके हमारे, निष्ठुर बने हो कैसे।
जीवन के तुम सहारे, निष्ठुर बने हो कैसे॥

गाते-गाते गुलशन ठंढी साँस भरने लगी, हृदय के उद्गार गान द्वारा निकलने लगे:—

दिले बेक़रार रोया, कैसे क़रार होगा।
राहत न होगी तब तक, जब तक न यार होगा॥
तेरे दरस को हरदम, आँखें तरस रही हैं।
क्योंकर न चैन खोके, दिल बेक़रार होगा॥

खूने जिगर को पीते, करवट बदल के जीते।
दिल से न दिल मिला तो, जीवन भी भार होगा ॥

तीसरा परिच्छेद

मैं पागल हो गई हूँ।
सच्चे प्रेम के लिये संसार पागल है।

"धन-मद कैसा प्रबल है ? लज्जा-शर्म, मर्यादा—सभी इसमें गायब हो जाते हैं; प्रेम तो इसमें शांत ही हो जाता है।" एक पुराने मकान में इधर-उधर टहलता हुआ अरुण बड़बड़ा रहा है। कमरे में एक टूटा-फूटा टेबुल और एक कुर्सी पड़ी हुई है। उसपर धूल चढ़ी हुई है। एक तरफ़ एक चौकी पर गद्दा बिछा हुआ है। दूसरी ओर एक पानी की सुराही और एक लोटा-गिलास रक्खा हुआ है। गद्दे के पास लिखने के कागज़ पड़े हुए हैं और उसी के पास लकड़ी का एक छोटा-सा संदूक रक्खा हुआ है। उस कोठरी के सामानों में ये ही मुख्य चीजें हैं।

"कुदरत के विचित्र खेल हैं। संसार का सच्चा बंधन प्रेम है; जिसका नकली बंधन धन है। उसने सच कहा था, कि 'ज़र से बढ़के दुनियाँ में कोई चीज़ नहीं।' आहा ! लक्ष्मी ! लक्ष्मी !! तू कैसे-कैसे खेल खेलती है। समझदार के हाथ आती है। तो उसे अच्छी राह बताती है और मूर्ख के हाथ जाती है, तो उसे कुमार्ग में ले जाती है। कोई-कोई लक्ष्मी के लिये धर्म, इज्ज़त और शरीर बेच डालते हैं; फिर भी कोई धन की क़ीमत नहीं समझते।

दुनियाँ में धन न होता, धन का बंधन न होता, तो सृष्टि कैसे चलती ? सबने आज मूर्खों की तरह गुलशन को रुपए दिए। मैंने नहीं दिया, तो लोग टीका-टिप्पणी करने लगे। मैंने बाद को दे जाने का वादा किया है। कहा है, तो देना ही पड़ेगा। यही ग़नीमत है, कि गुलशन ने मुझे नहीं पहचाना। शायद मेरे बारे में उसे कोई शंका भी नहीं हुई। वह चाहे जैसी होशियार क्यों न बने, किंतु मेरे आगे उसके भाव जरा भी छिपने नहीं पाए। चलूं, उसे पच्चीस रुपए दे आऊँ और उसे यह भी बता आऊँ, कि अच्छी राह पर किस तरह रुपए ख़र्च किए जाते हैं। अब उसकी स्थिति बहुत कुछ बदल गई है; इसलिये जरूर वह मेरा कहा मान लेगी। लेकिन इतनी होशियारी से रहना चाहिए कि जिससे वह कहीं मुझे पहचान न जावे।"

अरुण ने कपड़े पहने। संध्या का समय था, राह में झिलमिलाते तारों की तरह म्यूनिसिपैलिटी की लालटेनें झिलमिला रही थीं। मिल के मज़दूर तथा अन्यान्य मजदूर घर की ओर जाने की ख़ुशी में धक्का-मुक्की करते चले जा रहे थे। शाक-सब्जीवाले राह किनारे से अपनी दूकानें हटाने में लगे हुए थे। घोड़ा-गाड़ी तथा मोटरगाड़ियाँ स्टेशन से उतरे हुए मुसाफ़िरों को लिये भागी जा रही थीं। अरुण न जाने किस धुन में चला जा रहा था। गुलशन के घर तक वह चाबीदार पुतले की तरह चला गया। वहाँ पहुँचकर उसने गुलशन की दासी मीनाक्षी से ख़बर देने के लिये कहा।

मीनाक्षी ने पूछा—"आपने अपना नाम क्या बताया जनाब?"

अरुण—"नाम की कोई जरूरत नहीं, केवल इतना कहना

कि दोपहर को आनेवाले गृहस्थों में-से एक आदमी रुपए देने को आया है।"

मीनाक्षी तुरंत ऊपर चली गई। गुलशन अभी तक मसहरी पर उदास पड़ी हुई थी। उसके मन में अभी तक "निष्ठुर बने हो कैसे" वाला गाना गूँज रहा था।

मीनाक्षी—"बाईजी! जो दोपहर को आए थे, उनमें-से एक कुछ रुपए देने आए हैं।"

गुलशन ने उसकी ओर बिना देखे ही जवाब दिया—"रमणलाल होंगे, कह दे कि मेरी तबीयत ठीक नहीं है। माफ़ करें; इस वक्त मुलाक़ात नहीं हो सकती।"

मीनाक्षी ने स्पष्ट कहा—"नहीं बाईजी! रमणलाल नहीं हैं। यह तो कोई और ही आदमी है।"

जरा व्यग्रता के साथ गुलशन ने पूछा—"कौन, वह जो दूसरे आदमी बैठे थे, वही आए हैं?"

"जी हाँ, वही हैं।"

गुलशन विचार में पड़ गई—"वेश्या के घर विना पैसे आनेवाला, संगीत और सौंदर्य के आगे विरक्तों की तरह नीरस बनकर बैठनेवाला, बाद को रुपए देने आवे, यह कैसा स्वभाव! आदमी धनी तो नहीं जान पड़ता। देखने में ग़रीब ही-सा है। लेकिन चेहरा गंभीर और शानदार है। दिल में आता है, कि चाहे जो हो, मिलने से इनकार कर दूँ, पर क्या करूं? लाचार होना पड़ता है। खुदा ने दुनियाँ के नाटक के तख़्ते पर भेजा है, तो पात्र का काम किए बिना छुटकारा ही नहीं। देखूँ तो सही, कौन और कैसा—"

गुलशन विचार में पड़ी हुई थी; मीनाक्षी ने उसका ध्यान भंग करते हुए पूछा–" तो क्या हुक्म है, बाईजी ? "

" अच्छा ! " गुलशन ने अपना विचार छोड़कर जवाब दिया–" इज्ज़त के साथ बुला ले आ । "

क्षणभर बाद ही मीनाक्षी अरुण को उस कमरे में पहुँचाकर चली गई । गुलशन ने उठकर कुर्सी की तरफ़ इशारा कर हँसते हुए चेहरे से कहा–" बैठिए हुज़ूर ! आपने यहाँ आकर मुझपर बड़ा एहसान किया है । "

कुर्सी पर बैठते हुए अरुण ने कहा–" कुसमय पहुँचकर तकलीफ़ ही दी, इसके लिये माफ़ करना । ज़ुबान से वादा किया था, इसीलिये आना पड़ा है । "

यह कहते हुए अरुण ने गुलशन के आगे रुपए रख दिए । गुलशन उसे तेज़ निगाहों से घूरती हुई बोली–" इतनी तकलीफ़ करने की जरूरत ही क्या थी ? क्या आप समझते हैं, कि मुझे आपका ऐतबार नहीं ? "

अरुण—" नहीं, यह बात नहीं । जब देना ही है, तो जहाँ तक हो, जल्द कर्ज़ से छुटकारा मिले, अच्छा है । यही सोचकर चला आया । "

इसपर गुलशन ने कुछ भी जवाब न दिया; वह अरुण के चेहरे की ओर टकटकी बाँधे देखती रही । अरुण ने उसे इस तरह चुपचाप देखते हुए देखकर कहा—" तबीयत कुछ ठीक नहीं है क्या ? "

गुलशन—"नहीं, कुछ ऐसी नहीं; तबीयत तो ठीक है लेकिन—"

अरुण ने बात काटकर पूछा—" लेकिन क्या ? "

गुलशन—" लेकिन आप नाराज न होइएगा । मैं यह कहती थी, कि आप जब दोपहर को इस लौंडी के घर तशरीफ़ लाए थे, तो कहने लगे, मनीबेग भूल आया हूँ, क्या यह बात सच है ? क्या ऐसा भी कहीं हो सकता है कि खाना खाने बैठे और खाना ही भूल जाय ? यह तो आपने मगर और बंदर का-सा तमाशा किया था । "

अरुण ने गुलशन की दूरन्देशी पर खुश होकर पूछा—" वह कैसा ? "

गुलशन हँसकर कहने लगी—" सुनिए ! एक बंदर की एक मगर से बड़ी दोस्ती हो गई । बंदर हमेशा अच्छे-अच्छे फल लाकर मगर को देने लगा । मगर वह फल अपनी स्त्री को खिलाने लगा । कुछ दिन बाद मगर की औरत मगर से कहने लगी, कि जो हमेशा ऐसे मीठे फल खाकर रहता है, उस तुम्हारे दोस्त का कलेजा कितना मीठा न होगा । इसलिये तुम उसे किसी बहाने से यहाँ बुला लाओ । उसका कलेजा खाने से बड़ा आनंद आएगा ।

बेवकूफ़ मगर अपने दोस्त को बुलाकर लाने के लिये तैयार हो गया । उसने बंदर से कहा—यार ! तेरी भाभी तुझे बहुत याद करती है; इसलिये आज तू मेरे घर पर चल । मैं तुझे अपनी पीठ पर बैठाकर ले चलूंगा—"

अरुण ने कहानी का रस जमाते हुए कहा—"अच्छा, फिर ?"

गुलशन—" उस भोले बंदर ने उसकी बात सच्ची समझ ली । और चलने को तैयार हो गया । थोड़ी दूर पानी में जाने पर मगर ने बंदर से सच्ची बात कह दी । तब बंदर ने कहा, कि

यार ! तूं भी बड़ा बेवकूफ़ है; अगर तूं मुझसे यह बात पहले ही कह देता, तो मैं कलेजा लेकर आता। अब कहने से कोई फ़ायदा नहीं। क्योंकि अपना कलेजा तो मैं अपनी औरत के पास रखकर आया हूँ। बंदर की यह बात सुनकर मगर ने कहा, कि यह बात है, तो मैं तुझे फिर किनारे ले चलता हूँ; तूं घर से कलेजा लेकर जल्द आ। यह कहकर उसने बंदर को फिर किनारे पहुँचा दिया। बंदर हँसता हुआ चल दिया। मेरी समझ में आप भी शायद ऐसा ही खेल खेलें, लेकिन आपके फिर तशरीफ़ लाने से मेरा वह शुबहा दूर हो गया।"

अरुण—"बात तो ठीक है; लेकिन इस कहानी में बंदर ने अपनी जान तो बचाई, किंतु अपने दोस्त को अच्छी सलाह नहीं दी। अपना बुरा चाहनेवालों का भी भला करना चाहिए; इसीलिये उस समय मैंने ऐसी बात कही थी।"

गुलशन—"तब शायद आप मुझसे कुछ कहना चाहते हैं; कहिए, क्या हुक्म है ?"

अरुण की समझ में न आया, कि बातें अब कैसे शुरू की जायँ। किंतु अपनी हाजिर-जवाब बुद्धि के अनुसार उसने कहना आरंभ कर दिया—

"तुम जानती होगी, कि एक वह चीज़ भी है, जिसे कोई आदमी बड़ी ज़हमत उठाने पर भी नहीं पाता। फिर वही चीज़ दूसरे को बिना तकलीफ़ के मिलती है और उसकी कुछ भी क़ीमत उसकी नज़र में नहीं होती। तुम्हारी आँख सहज ही हिल जाय, तो हज़ारों रुपए मिलते हैं, लेकिन इस दुनियाँ में ऐसे भी लाचार बेचारे हैं, जिनकी आँखों से खून की बारिश होने पर भी उन्हें एक

पाई दिखाई नहीं देती। तुम्हारे कोमल देह की पूजा करने के लिये लाखों पुजारी रात-दिन तड़पते हैं; लेकिन ऐसे भी लोग हैं, जो दूसरों की पूजा करते-करते अपना ही सत्यानाश कर देते हैं। फिर भी उन्हें पेटभर खाना नहीं मिलता। तुम्हारे छोटे-से काम में मदद देने के लिये हज़ारों आदमी इकट्ठे हो जावेंगे, लेकिन लाचार मुहताज़ों की तरफ़ कोई फूटी आँख से भी नहीं देखता। अब क्या यह भी बताने की जरूरत होगी कि इन पैसों को किस तरह काम में लाना चाहिए ?"

गुलशन ने कटाक्ष करते हुए कहा—"तब क्या आप यह चाहते हैं, कि मैं अपनी सब दौलत-मुफ़लिस मुहताजों में लुटा दूं ?"

अरुण—"यह तुम्हारी खुशी; मैं तो रुपयों को काम में लाने की राह बता रहा हूँ।"

गुलशन—"इन रुपयों को आप ही ले जाइए।"

अरुण—"कभी नहीं। तुम्हें अच्छी राह दिलाना मेरा फ़र्ज है। अपना फ़र्ज समझना तुम्हारा काम है। अब मैं जाना चाहता हूँ।" इतना कहकर वह उठने लगा।

गुलशन—"बैठिए तो सही; इस लौंडी के हाथ का पान तो खा लीजिए।" इतना कहकर गुलशन पान बनाने लगी। बगल में रक्खी हुई घंटी को दोबार बजाकर गुलशन फिर बातचीत में लग गई।

गुलशन—"क्या ऐसे मुहताजों के लिये रुपए खर्च करने से दिल को कुछ खुशी होती है ?"

अरुण—"जरूर; दुनियाँ में इससे बढ़कर कोई आनंद ही नहीं है। इससे बढ़कर कुछ मजा ही नहीं है। एक बार आज़माने

से तुम्हें आप ही मालूम हो जायगा । क्या मैं तुमसे और भी कुछ पूछ सकता हूँ ? ”

गुलशन ने अरुण की ओर देखकर कहा—“ हाँ ! हाँ !! आप खुशी से पूछ सकते हैं । ”

अरुण—“ तुम आनंद के लिये सवाल क्यों कर रही हो ? तुम्हारे पास इतना धन होने पर भी क्या ज़िंदगी में कभी तुम्हें आनंद नहीं मिला है ? ”

गुलशन—“ यह तो तुमने ऐसी बात छेड़ी, जो मेरी ज़िंदगी से मतलब रखती है। फिर भी आपने ऐसे ढंग से बात छेड़ी है, कि बिना कहे मुझसे रहा भी नहीं जाता । ”

गुलशन को रंग पर आती देखकर अरुण ने कहा—“ क्या तुम्हें भी कोई दुःख है ? ”

गुलशन—“ है क्यों नहीं, लेकिन मैं अपना दुःख किससे कह सकती हूँ ! दुनियाँ की निगाहों में मैं लाखों रुपए जमा कर चैन करने वाली औरत मानी जाती हूँ । लेकिन मेरे दिल की जलन को कोई भी जान नहीं सकता । क्या दुनियाँ का सब आराम पैसे में ही है ? क्या बड़े-बड़े बँगले और बाग़-बग़ीचों में ही आराम है ? क्या दिल को लुभानेवाली खूबसूरती में ही आराम है ? नहीं-नहीं, यह सब ग़लत है । जब तक दिल को आराम देने-वाला, दिल का प्यार करनेवाला, हमारे दुःख से दुखी होनेवाला और हमारे लिये मरनेवाला आदमी नहीं, तब तक आरामवाली सब चीजें भी तकलीफ़ ही दिया करती हैं । कहाँ तक कहूँ ! यह जवाहिरात के ज़ेवर और अच्छे-अच्छे कपड़े जो दूसरों को आनंद देते हैं । पहनते ही वह सब मुझे आग की तरह जलाते हैं । यह

खूबसूरती, जो दूसरों के लिये कलेजे का दर्द कहलाती है, उसने मुझे जला-जलाकर ख़ाक बना दिया है। मेरे इतने आशिक़ों में एक भी ऐसा दिखाई नहीं देता, जो मेरी यह खूबसूरती न रहने पर भी मेरा प्यार करे। जब तक यह हुस्न है, जब तक कान को आनंद देनेवाला स्वर है; तभी तक ये सब प्यार करनेवाले भी हैं। इस रोशनी के बुझ जाने पर न तो उजाला ही रहेगा और न उसपर पतंग ही मरने आएँगे। हम लोगों का जीवन भी कोई जीवन है?"

अरुण—"सत्य है। जिसको सच्चा प्रेम कहते हैं, उसका इस दुनियाँ में मिलना बहुत कठिन है। लेकिन यह सब समझ-बूझकर भी तुम इस धंधे में क्यों पड़ीं?"

गुलशन—"मैं इस धंधे से अलग हो ही नहीं सकती। मैं रामजनी हूँ, दासी हूँ, मेरा जन्म ही वेश्या के घर में हुआ है। मैं हरजाई कमीनी रंडी नहीं हूँ। रंडियों का काम दिन में दस आदमियों के हाथ इज्जत बेचने का है; हमारा काम संगीत से पैसे कमाना और किसी अच्छे आदमी की तनख़ाह लेकर उनकी सेवा करने का है। हम सब दिल से प्यार करनेवाले आदमी पर मरती हैं। लेकिन कोई हमारा ऐतबार नहीं करता। मैंने एक ग़रीब को दिल दिया था, मैं अपने जवाहिरात बेच-बेचकर उनका खर्च चलाती थी; उसपर भी उसकी बेवफ़ाई देखकर मैंने उसे छोड़ दिया। इसके बाद एक दूसरे बड़े ही लायक़ आदमी मिले। वे दिल से मुझे प्यार करते थे। मेरे लिये वह अपने पैसे उड़ाकर ग़रीब हो गए। क़िस्मत पलट गई, उन्हें रोज़गार में बहुत बड़ा घाटा आया। मैं फिर जवाहिरात बेचने लगी। लेकिन फिर भी मेरा नसीब मेरे आगे-ही-आगे दौड़ता रहा। आख़िर वह मेरे

प्यारे मुझे छोड़कर चले गए। वे किसी और मतलब से नहीं चले गए। मेरा दुःख उनसे देखा न जाता था। इसलिये वे यह कहकर गए, कि जब मेरे पास फिर रुपए आवेंगे, तब मैं तुम्हें मुँह दिखाऊँगा। आज कई महीने हुए—"

गुलशन रो पड़ी; आगे उससे एक शब्द भी कहा न गया।

अरुण ने पूछा—"तो क्या तुम्हें यह विश्वास है कि वह आदमी रुपए वाला होने पर फिर तुमसे मिलेगा ?"

गुलशन—"नाऐतबारी की कोई जगह नहीं। मैं उनके दिल को पहचान चुकी हूँ। वे भी मेरे दिल को पहचानते हैं। वे जरूर आवेंगे और कभी-न-कभी दर्शन देंगे ही।"

अरुण—"तुम्हारी कहानी बहुत दर्दनाक है।"

गुलशन—"हाय! आप सच कहते हैं। मेरी क़िस्मत ही ऐसी है। किसी समय आपको फुरसत होगी, तो मैं आपको अपनी रामकहानी सुनाऊँगी। इस जन्म में मैंने सिवा अपने उक्त प्यारे के और किसी को भी अपनी कहानी नहीं सुनाई है। लेकिन आज मेरा दिल बेतरह धड़क रहा है; आपकी बातों से मेरा दिल उछलने लगा है। दिल चाहता है कि सारी बातें आपको सुना कर अपने दिल का बोझ हलका करूँ। मेरी समझ में नहीं आता, कि मैं क्यों ऐसी बेचैन हो रही हूँ।"

अरुण ने ठंढी साँस लेकर जवाब दिया—"यह भी कुदरत की करामात है।"

यह शब्द सुनकर गुलशन की आँखें चमक उठीं। उसने कहा—"आप कौन हैं ? क्या आप मेरे प्यारे के दोस्त तो नहीं हैं ? सच-सच बताइएगा।"

अरुण—" नहीं, मुझे क्या मालूम कि तुम्हारे प्यारे कौन-से हैं ? "

अरुण ने अपनी ज़ुबान पर अंकुश लगाते हुए फिर पूछा—तुम्हें ऐसा शुबहा क्यों हो रहा है ? "

गुलशन ने अरुण की बातों पर विश्वास करते हुए कहा—कुछ नहीं ! कुछ नहीं !! मैं पागल हो गई हूँ । "

चौथा परिच्छेद

विपद् पर विपद्

धन-मद, ग़रीबी का असह्य दुःख, राक्षसी महत्वाकांक्षा और सर्वनाशिनी वेश्या से कौन बचा है ?

" हुज़ूर ! मेरी औरत बहुत बीमार है । मुझे छुटकारा दीजिए । कल मैं नौकरी पर नहीं आ सकता । "

" बेवक़ूफ़ गधे ! बीमार है तो डॉक्टर की दवा कर । क्या तेरे घर बैठे रहने से ही वह अच्छी हो जावेगी ? मैं छुट्टी नहीं दे सकता । "

" लेकिन साहब ! आज तो बीमारी इतनी बढ़ी हुई है कि शायद रात भर में सारा खेल समाप्त हो जायगा । मेरे मालिक ! ज़रा मुझ ग़रीब की तरफ़ देखिए । आप डॉक्टर के लिये कहते हैं, पर जहाँ पीने को काँजी भी नसीब नहीं, वहाँ मैं डॉक्टर की फ़ीस कहाँ से दूँगा ? मेरे पास तो एक पैसा भी नहीं है । मेरा तीन साल का छोटा बच्चा मारे भूख के छटपटा रहा है ! दया कीजिए साहब ! मुझ ग़रीब पर दया कीजिए ।"

" तुझे जो पंद्रह रुपए दिए थे, वह कहाँ फेंक आया ? उन रुपयों से औरत की दवा क्यों नहीं की ? बस, ऑफिस में जाकर अपने काम में लग जाओ। तुम्हें आज छुट्टी नहीं मिल सकती और दूसरे प्रकार की कोई मदद भी नहीं मिल सकती। "

"जनाब ! जहाँ एक घंटे देर से आने पर तनख़ाह काटी जाती है, वहाँ तनख़ाह के सिवा मदद की आशा कैसे की जा सकती है ? लेकिन मुझे मेरी तनख़ाह में-से तो कुछ दीजिए ! "

" अभी तनख़ाह में बारह दिन की देर है। तुझे रुपए दूँगा और तूँ कल से काम पर न आवे, तब मुझे उसी समय दूसरा आदमी कहाँ से मिल जावेगा ? मेरा जो नुक़सान होगा, उसका ज़िम्मेदार कौन होगा ? "

"अरे साहब ! आज मैं आठ वर्ष से पंद्रह रुपए तनख़ाह पर आपके यहाँ नौकर हूँ; तब आज क्या भाग जाऊंगा ? मुझपर दया कीजिए।"

"बस ! बस !! तेरी इतनी मदद की, जिसका परिणाम आज मैं देख रहा हूँ। चुपचाप जाकर अपना काम कर। "

" हाय ! जहाँ दैव ही रूठा है, वहाँ क्या किया जा सकता है ? "

माधवलाल सेठ एक मिल के एजेंट हैं। साथ ही एक होशियार दलाल भी हैं। राजनगर में इनकी बहुत इज्ज़त और धाक है। ये हजारों रुपए धर्मार्थ फंडों में दिया करते हैं। स्टेशन के पास इन्होंने एक बहुत बड़ी धर्मशाला भी बनवाई है। ये सब जगह दानवीर समझे जाते हैं। अभी हाल में इन्होंने इंडियन नेशनल बैंक अर्थात् हिंदू-राष्ट्रीय फंड में तीन लाख रुपए

का दान दिया है। एक अच्छे देश-भक्त तथा दानवीर के नाम से प्रसिद्धि पाने पर ये हिंदू भाइयों का भ्रातृ-भाव बढ़ाने में पूरी मदद करते हैं। इनके एक ख़ास कर्मचारी का नाम मदनराय है; यह खूब अच्छी तरह समझता है कि सेठ की कीर्त्ति कैसे बढ़ाई जाती है, नाम कैसे पैदा किया जाता है, और अपने पुराने किस्सों को कैसे ताज़ा किया जाता है। ऊपर लिखी बातचीत भ्रातृ-भाव के हिमायती सेठ माधवलाल और उनके पुराने नौकर रणछोड़ के बीच हो रही थी। रणछोड़ ग़रीब स्थिति का एक ब्राह्मण था उसकी उम्र पच्चीस वर्ष की थी। उसकी स्त्री दयागौरी की उम्र उन्नीस साल की होगी। रणछोड़ ने एंट्रेंस तक पढ़ने का अभ्यास किया था; किंतु परीक्षा में वह उत्तीर्ण न हुआ था। रणछोड़ को माधवलाल सेठ ने पहले-पहल अपने लड़के को पढ़ाने के लिये पाँच रुपए तनख़ाह पर नौकर रक्खा था। इसके बाद घर का बही-खाता लिखने की जगह देकर पंद्रह रुपए तनख़्वाह कर दी थी। इतनी कम तनख़्वाह में रणछोड़ का पूरा न पड़ता था। किंतु, सेठानी नर्मदाबहू बड़ी ही दयालु थीं। वे दयागौरी को कुछ धोती-कपड़े दे दिया करती थीं। दीवाली जैसे त्यौहार पर सेठ से छिपाकर कुछ त्यौहारी भी दे दिया करती थीं। इस तरह रणछोड़ का संसार चल रहा था। इधर एक महीने से दयागौरी बीमार पड़ी थी। बीमारी आशाजनक न होने से उसने (रण-छोड़ ने) अपने मालिक से जो छुट्टी माँगी थी, उसे पाठकगण पढ़ ही चुके हैं। रणछोड़ हताश होकर वहाँ से निकल कर मदनराय के पास गया। अपना अंतिम साधन समझ उसने उनसे भी दया की भीख माँगने का विचार किया।

उसके मन में यह विचार उठ रहे थे, कि चाहे नौकरी जाय, लेकिन मदनराय की सिफ़ारिश नहीं करना। किंतु मरता क्या न करता! विचार में आता, कि सीधे घर पहुँचकर मरण शैय्या पर पड़ी, प्यारी स्त्री के हृदय को शाँति दे, किंतु फिर ख़याल आया कि परमात्मा न करे, अगर उसे कुछ हो गया, तो ख़र्च कहाँ से आवेगा? अपनी और लड़के की गुज़र कैसे होगी? इस तरह के विचारों से लाचार होकर उसे मदनराय के पास जाना ही पड़ा। उस समय मदनराय अपनी इकलौती लड़की ऊषा के साथ बैठा संगीत की चर्चा कर रहा था। ऊषा वास्तव में ऊषा ही थी। उसकी उम्र सोलह वर्ष की थी। उसका चेहरा गंभीर और सुंदर था। युवावस्था की पूरी बहार होने पर भी उसपर जवानी जान न पड़ती थी। यह बात नहीं, उसे अपनी जवानी का ज्ञान ही न था; बात यह थी कि वह अपनी बुद्धि तथा ज्ञान का सदुपयोग करती थी। उसके सद्गुण उसके सौंदर्य से भी कहीं बढ़कर थे।

उसके सुमधुर मनोहर चेहरे से ऐसी प्रतिभा बरसती थी, जिसे देखकर देखनेवालों के चित्त में पूजनीय भाव उत्पन्न हो जाते थे। चाहे कैसा ही कामी पुरुष उस सुंदरी को क्यों न देखे, वह अपने दुष्ट विचारों को भूलकर उसकी ओर पूज्य भक्ति-भाव से देखने लगता था। चाहे उस देवी के सामने न रहने पर किसी के मन में कैसा ही विचार क्यों न हो, किंतु उसके सामने आते ही मन का विचार बदल जाता है। मदनराय बड़ा ही कंजूस और स्वार्थी था; किंतु ऊषा का नाम उसके सब ऐबों को भुला देता था। वह उसकी आवाज़ सुनने के लिये सदा-सर्वदा आतुर रहता

था। अच्छे कामों में वह ऊषा से सलाह लेता था । ऊषा ही उसके लिये जीवन और प्राण थी। ऐसी सुंदरी और सद्गुणी पुत्री-रत्न को कौन नहीं चाहता ?

ऊषा को गाना बहुत ही अच्छा लगता था। वह अपना अधिक समय गाने-बजाने में ही लगाती थी । नई-नई रागिनी सीखती और स्वयं उन रागों पर अपनी कविता कर पिता को सुप्रसन्न किया करती थी। वर्त्तमान ज़माने के सब शौकों में उसे केवल इतना ही शौक था । सभाओं में भी वह जाती थी, किंतु केवल व्याख्यान सुनने के लिये ही । अन्य स्त्रियों की तरह छिछोरी बनकर वह वहाँ व्याख्यान नहीं देती थी। उसकी चाल-चलन और पहनावे में बहुत ही सादगी थी । उसके घर जो-जो परिचित लोग आते थे, वे सब उसकी बुद्धि और सद्गुणों से अचंभे में आकर उसे देश के काम में भाग बटाने की सलाह देते थे। किंतु ऊषा का केवल एक ही जवाब था—"अधभरी गगरी हमेशा छलक जाती है; अभी मेरे ज्ञान का घड़ा अच्छी तरह से भरा नहीं है। कहीं मैं आगे बढ़ूं और यह अधूरा घड़ा छलक जाय, तो बाद को मैं बिलकुल काम न कर सकूंगी।"

जिस समय रणछोड़ मदनराय के दीवानखाने के पास पहुँचा, उस समय उसे अंदर से संगीत की आवाज़ सुनाई दी। मदनराय का यह नियम था कि जो मिलने आता, तो उसे पहले मिलने की इजाज़त लेनी पड़ती थी। इजाज़त मिलने पर वह मिल सकता था। भाग्यवशात् कहीं वे ऊषा के साथ बैठे हों, तब तो कोई बड़े भाग्य से उनके पास जा पाता था। यहाँ तक कि उस समय दरबान भी ख़बर देने के लिये वहाँ नहीं जा सकता था। दूसरों की

तो फिर बात ही दूर रही। रणछोड़ बाहर दरबान के पास बैठकर संगीत का मधुर स्वर सुनने लगा।

गाना

आ......आ......आ......

हृदय-दारिका, हाँ, हृदय दा...रिका...

हाँ, हृदय दा...रिका, औ बुद्धि बिदा...रिका...

औ बुद्धि बिदा...रिका-हाँ हृदय दा...रिका...

ऊषा के मीठे स्वर के साथ वीणा का मधुर स्वर ऐसा मिल जाता था, कि सुननेवालों को यह संदेह होता था कि यह वीणा वज रही है या कोई गंधर्व-कन्या गा रही है। रणछोड़ ध्यान दे कर सुनने लगा:—

गाना

हृदय दा...रिका......

हृदय दा...रिका हाँ! सत्य विमो...चना......

करतो कुंठित बुद्धि, गुणहीन, स्नेह शृंखला...

हाँ, हृदय दा...रिका .....

का...र्य भ्र · ष्ट, ध-र्म नष्ट, न-ष्ट करती वो—सदा

गुण विही...न स्वार्थ-लीन-मूढ़मति दुःखदा

विश्व यो-षिता......आ......

विश्वयोषिता .. औ महत्त्व-काँक्षिया......

श्रेष्ठ श्रोमंताई और ग़रीबी चतुः आ...पदा

हाँ हृदयदा...रिका...हाँ हृदय दा......रिका.....

गाना पूरा होते-होते रणछोड़ उछल पड़ा और बिना किसी

प्रकार की खबर दिए ही वह एक दम दौड़कर अंदर पहुँच; ऊषा के पैरों पर गिर कर कहने लगा:—

"सत्य है देवी! सत्य है। इस संसार में यह चारों आपदाएँ ही बड़ी ज़बरदस्त हैं। मनुष्य को अपने कर्त्तव्य से भ्रष्ट तथा बुद्धिहीन बनाकर यही चारों आपदाएँ हर प्रकार के दुष्कर्म कराती हैं।"

रणछोड़ के एकाएक भीतर घुस आने से मदनराय और ऊषा के हृदय में क्रोध और आश्चर्य का उदय हुआ। ऊषा चुपचाप उसकी तरफ़ देखने लगी। मदनराय ने रणछोड़ की तरफ़ कुछ क्रोध भरी निगाह से देखकर कहा—"रणछोड़! क्या तुम्हें खबर नहीं है कि यहाँ बिना इजाज़त कोई नहीं आ सकता? क्या दरबान सबके सब मर गए थे।"

रणछोड़—"हुज़ुर! क्षमा करें। मुझे दरबानों ने रोका था। मैं बाहर ड्योढ़ी पर ही बैठा था; किंतु इन पूजनीया देवीजी के हृदय को पानी करनेवाले गाने ने मेरे हृदय की स्थिति बदल दी। मुझे यह भी याद न रहा, कि मैं क्या कर रहा हूँ, इसलिये मैं दौड़ कर अंदर चला आया। महाशय! मुझसे भूल हुई है, मैं अभी बाहर चला जाता हूँ, आप मुझे क्षमा करें।"

यह कहकर रणछोड़ दरवाज़े की ओर चला।

ऊषा—"पिताजी! रणछोड़ आज बहुत दुखी जान पड़ता है। चार आपदाओं में-से किसी आपदा में जरूर यह पड़ा जान पड़ता है। ऐसा न होता, तो इसके जैसा कर्त्तव्यपरायण मनुष्य बिना आज्ञा अंदर पहुँचकर नियम का उल्लंघन न करता। आप उसकी भूल को न देखिए, पर उसके कारण को देखिए।"

ऊषा को अपनी ओर से कुछ बोलते सुनकर रणछोड़ दरवाज़े के पास ही ठहर गया। यह एक साधारण नियम था, कि मदनराय से किसी की मुलाक़ात होने के समय ऊषा वहाँ न रहती थी; किंतु आज आज्ञा लेने के लिये ऊषा ने कहा—" पिताजी ! यदि आपकी आज्ञा हो, तो आज मैं यहीं बैठी रहूँ।"

जो राय ऊषा की थी, वही मदनराय की भी थी। उसने हँसते हुए स्वीकारकर, रणछोड़ को बुलाकर पूछा—" रणछोड़ ! तुम कैसे आए ? "

ऊषा ने रणछोड़ को देखकर कहा—" तुम्हारी आँखों में आँसू क्यों हैं ? "

रणछोड़—" महाशय ! आज का दिन मेरी ज़िंदगी में बड़े महत्व का जान पड़ता है। आज जिसप्रकार बहुत ही तीखा अनुभव हुआ है, ठीक वैसे ही आज सच्चे वात्सल्य-भाव के आग्रह से भरे हृदय को हृदय का अनुभव भी हुआ है।"

मदनराय ने अपनी स्थिति के गर्व में आकर कहा—" यह सब अलंकारिक भाषा छोड़कर, साफ़-साफ़ कहो।"

ऊषा ने स्नेह के साथ कहा—"नहीं पिताजी ! यह अलंकारिक भाषा नहीं है, बल्कि दिल का उबाल है। कहो रणछोड़ ! आगे कहो !!"

रणछोड़—" बहिन ! मेरे घर में आज एक महीने से बीमारी है। आज का दिन मुझे बड़ा ही भयंकर दिखाई पड़ रहा है। मैं नहीं कह सकता कि अब तक मेरे घर में क्या हो गया होगा ? सेठजी के पास मैं आज के दिन की छुट्टी और अपनी तनख़ाह के कुछ अंश को माँगने गया था। परंतु हाय ! हम ग़रीबों की क़िस्मत ही ग़रीब है। ग़रीबों पर, सिवा आप-सी देवी के और किसका हृदय

दया से पसीज सकता है ? मैंने अपना सारा हाल कह दिया। मेरे तीन वर्ष के बालक को आज तीन दिन से दूध भी नहीं मिला है। अब यदि ऐसी हालत में मेरी स्त्री मुझे और कोमल बालक को छोड़कर चल दे, तो मेरा बालक बिना माँ का हो जायगा और उसका मृतक-संस्कार मैं कैसे—"

रणछोड़ से आगे एक शब्द भी न बोला गया; वह ज़मीन में बैठकर रोने लगा। ऊषा की आँखों से भी आँसू टपक पड़े और उसके हाथ का कागज़ हाथ से गिर पड़ा। मदनराय का भी हृदय भर आया। वे अपनी कुर्सी से उठे और रणछोड़ के पास जाकर उसकी पीठ पर हाथ फेरकर धैर्य देते हुए बोले—"उठो रणछोड़, उठो ! मर्द होकर ऐसे हताश क्यों होते हो। लो यह पचीस रुपए, जाओ-सीधे घर चले जाओ और अपनी दुखिनी स्त्री को धैर्य दो। उठो—घबड़ाओ नहीं।"

रणछोड़ ने धीरज धरकर रुपए लिए और मदनराय को प्रणाम किया। इसके बाद वह ऊषा के भी पैरों गिरा। दोनों से जाने की आज्ञा लेकर वह चला गया।

उसके जाते-जाते ऊषा ने कहा—"रणछोड़ ! कोई काम पड़े, तो ख़ुशी से कहला भेजना।"

रणछोड़—" बहिन ! और कौन-सा काम पड़ने को है ? यदि काम भी पड़ेगा, तो मैं किससे ख़बर भेजवाऊँगा ? यदि ऐसा कोई ख़ास काम पड़ेगा, तो मैं अपने लड़के—"

उसका गला भर आया। वह कुछ भी न बोल सका। ऊषा उसके हृदय की गति समझकर बोली—" नहीं-नहीं; मैं खुद आदमी भेजूंगी।"

रणछोड़–"दयामयी देवि ! आपने इस भिखारी देशवासी पर अतीव दया दिखाई है। भगवान आपकी मनोकामना पूर्ण करे।"

रणछोड़ उस मकान से बाहर निकल कर माधवलाल, मदनराय और ऊषा के चरित की तुलना करता हुआ चला। ऊषा को तो साक्षात् दया की देवी का अंशावतार वह समझने लगा। मनही-मन उसे हज़ारों आशीर्वाद देता हुआ वह घर पहुँचा।

घर में उसकी स्त्री ज़मीन पर बिछे हुए एक बिछौने पर पड़ी-पड़ी खाँस रही थी। बालक रघू उसकी छाती पर सिर रखकर पड़ा हुआ "बाबा ! बाबा !" की रट लगाए हुए था। दया उसके माथे पर हाथ फेर धीमे स्वर से–" क्या है, बेटे !" कह रही थी। रणछोड़ के घर में पैर रखते ही उसके हृदय में उसी गाने की पहली लाइन गूँज उठी:—

" चार आपदाएँ "

पाँचवाँ परिच्छेद

गुलशन की कहानी

गुलशन अरुण से अपनी कहानी कहने लगी–" मेरी अम्माँ एक मंदिर में गाने–बजाने पर नौकर थी। उनकी दो लड़कियाँ थीं। एक मुझसे पाँच साल बड़ी थी।

" लेकिन जब मैं तीन साल की थी, तभी वह मेरी बड़ी बहिन खुदा के घर रवाना हो गई। सिवा मेरे अम्माँ को और कोई औलाद न रह गई। इसलिये वह मुझे बहुत चाहती थीं। उस समय

मेरा निज का एक बड़ा मकान भी था। अम्माँ भी बहुत सुखी थीं। मेरी जातिवालियाँ उनको देखकर जलती थीं। जब मैं चार वर्ष की हुई, तब स्कूल में पढ़ने जाने लगी और अम्माँ जिस समय उस्तादजी के पास बैठकर गाने की तालीम लेतीं, उस समय मैं भी बैठकर स-रे-ग-म-का आरोहण—अवरोहण सीखती थी। अम्माँ मेरी कोमल आवाज़ सुनकर दीवानी हो जाती थीं। मुझे हमेशा दूध, मलाई, घी, मिठाई के सिवा और कोई रूखी-सूखी चीज़ खाने को न दी जाती थी। मैं उस समय यही सब खाना पसंद करती थी। मेरा चेहरा इतनी छोटी उम्र में भी बहुत खूबसूरत था। एक साल बाद मुझे अभिनय, नाच, बॉलडाँस (अँगरेज़ी नाच) वग़ैरह सिखाया जाने लगा। मेरा ज़ेहन बहुत अच्छा था, इससे मैं सात ही वर्ष की उम्र में सब सीख गई। अम्माँ मेरी तालीम के वक्त बहुत अच्छे-अच्छे कपड़े पहनाती और जब उस्तादजी चले जाते, तब मुझे गोद में लेकर मारे बोसों के हैरान कर मारती थी। आह! वे भी सुख के कैसे दिन थे! उस समय मुझे मालूम ही न थी, कि इस ज़िंदगी का आख़िरी नतीजा क्या है?"

कहते—कहते उसकी नज़र पान के डिब्बे पर पड़ी। उसे एकाएक याद आ गया।

"तौबा! तौबा!! सचमुच मैं पागल हो गई हूँ। आपको मैंने अभीतक पान ही नहीं दिया।" इसके बाद उसने दरवाज़े की ओर देखकर कहा—"अरी मीनाक्षी! देर क्यों कर रही है?"

मीनाक्षी मानो उसकी आवाज़ की राह ही देख रही हो; वह तुरंत हाज़िर हुई। उसने अरुण के सामने दूध से भरा एक कटोरा रख दिया। गुलशन ने उसे पीने का आग्रह किया। अरुण ने भी पी

लिया। गुलशन ने पान बनाकर अरुण को दिया।

हाथ में पान लिए ही लिए अरुण ने कहा—"हाँ, अब अपना हाल कहती चलो।"

गुलशन—"मुझे उस समय जन्नत का सुख मिल रहा था। अच्छे कपड़े पहनना, दूध-मलाई खाना और खँजरी के ऊपर नाच के साथ गाना। उस्ताद का "शाबाश! शाबाश!" कहना और मेरी अम्माँ का मारे प्यार के मुझे हैरान करना। इन सबके आगे मुझे दुनियाँ की सारी चीजें नाचीज़ जान पड़ती थीं। अच्छा, आप पान क्यों नहीं खाते?"

अरुण—"मुझे माफ़ करना। मैं किसी के हाथ का पान नहीं खाता।"

गुलशन—"ऐं! किसी के हाथ का भी नहीं? क्या अपनी प्यारी के हाथ का भी नहीं?"

अरुण—"तुम मुझे ऐसे सवालों से क्यों हैरान कर रही हो?"

गुलशन—"लेकिन आपको जवाब तो देना ही पड़ेगा।"

अरुण—"मैं सिवा अपने दिल की देवी के और किसी के हाथ का पान नहीं खाता।"

गुलशन—"इससे जान पड़ता है कि अभी आपकी शादी नहीं हुई है।"

अरुण ने हँसते-हँसते कहा—"तुम तो बैरिष्टरी करने लगीं।"

गुलशन—"आपकी प्यारी का नाम?"

अरुण—"मुझे माफ़ करना, फिर किसी समय बता दूंगा।"

गुलशन—"अच्छा, आपकी जैसी मर्ज़ी।"

अरुण—"अच्छा, तो फिर आगे कहो।"

गुलशन—"जब सात वर्ष की उम्र में मेरी यह सब तालीम ख़तम हो गई, तब मैं दूसरी लड़कियों के साथ ज़लसे में नाच नाचने और गाना गाने के लिये जाने लगी। कभी छः-सात और कभी-कभी बारह-बारह लड़कियाँ तक जाती थीं। मुझे दो-तीन घंटे में पचास-साठ रुपए मिल जाया करते थे। उसपर भी मुझे अँगूठी, हाथ के कड़े, चाय के प्याले वग़ैरह भी इनाम में मिल जाते थे। गोया तमाशा देखनेवाले सब मुझपर ही मरते थे। मेरी सुरीली आवाज़, दिल को हिला देनेवाला हुस्न और नाज़ुक बदन की वजह से सबकी निगाहें मेरी ही ओर पड़ती थीं। मेरी सखियाँ जो मेरे साथ नाच तमाशे में आती थीं, वह मेरे इस इनाम को देखकर जल मरती थीं। मैं भी उनकी ओर बड़ी मग़रूरी से देखती और मारे गर्व के तन जाती थी। हाय! कुछ ही दिन बाद मुझे मालूम हो गया कि मैं जिस गर्व से अकड़ती थी—अपने पर मरनेवालों को देख जो मैं मारे ख़ुशी के आसमान पर चढ़ जाती थी; वह सच्चा गर्व और सच्चा आनंद न था। क्योंकि मैं तो दासी बनने के लिये पैदा हुई थी।"

गुलशन ज़रा चुप हो गई। उसने थोड़ा पानी पीकर अपने को ताज़ा बनाया। साड़ी के आँचल से पसीना पोंछकर फिर अरुण की ओर देखकर कहने लगी—

"एक दिन एक धनी बनिया दो सौ रुपए बयाने देकर मुझे अपने लड़के की शादी में नाचने के लिये विदेश ले जाने की बात पक्की कर गया। मुझे कुल पाँच सौ रुपए मिलनेवाले थे। हम तीन लड़कियाँ थीं। उसमें तीन सौ मेरा और एक-एक सौ उन दोनों लड़कियों का ठीक हुआ था। हमें वहाँ दो ही रोज़ रहना था।

मेरा ग़रूर इससे और भी बढ़ गया। मैं समझी कि वकील-बैरिष्टर मेरे आगे क्या रुपए पैदा करेंगे? मुझे यह ग़रूर हुआ कि मैं इतनी छोटी उम्र में दो दिन में तीन सौ रुपए कमाऊंगी। हमारे साथ फ़क़त उस्तादजी ही जानेवाले थे। वहाँ जाने पर पहले ही दिन गाना ख़तम होने पर उस बनिएँ और मेरे उस्ताद में झगड़ा हो गया।"

"मैं इतनी छोटी-छोटी घटनाएँ आपको क्यों सुना रही हूँ; उसका मतलब आप बाद को समझेंगे। झगड़ा होने पर वह बनियाँ उस्तादजी को मारने का डर दिखाने लगा। उस्तादजी डरे। उस्तादजी बिना मुझसे कुछ कहे चुपके-से वहाँ से खिसक गए। मेरे साथ जो दो लड़कियाँ थीं, वह मुझसे कम उम्र की थीं। हम सबके पास जवाहिरात के गहने भी काफ़ी थे। उनमें सभी हमारे न थे; कितने ही मँगनी के थे। दूसरे दिन चार बजे शाम तक भी जब उस्तादजी न दिखाई दिए, तब मैं घबड़ाने लगी। बनियाँ आकर मुझे धीरज देने लगा। हम सबको उस दिन फूल-श्रृंगार करना था। मैंने फूल सजा दिया। हमारे सिर में फूल गूंथने के समय बहुतेरे लोग तमाशा देख रहे थे। उस रोज़ हमने खँजरी पर नाच शुरू किया। छः बजे से आठ बजे तक हमें नाचना था। जब आठ बजे मैंने नाच बंद किया, तब उस बनिएँ ने और आधे घंटे नाचने को कहा। हम सब बहुत थक गईं थीं; फिर भी क्या करतीं? एक तो अभी तीन सौ रुपए लेना बाकी था, दूसरे हमारे उस्तादजी भी नहीं थे। हम डर से साढ़े आठ बजे तक नाचती रहीं। रात में हमें नींद भी नहीं आई। उस अनजान जगह में इतने ज़ेवरों के साथ हम तीन ही थीं। सबेरा होने पर वह बनियाँ

हम लोगों को साथ लेकर घर पहुँचाने आया, घर आने पर मेरी जान में जान आई। वह बनियाँ मेरी अम्माँ के सामने मेरी बड़ी तारीफ़ करने लगा। जाने के समय वह मुझे पाँच सौ की एक अँगूठी इनाम दे गया और मेरी अम्माँ से एक ऐसी बात कह गया, जिसे सुनकर मेरा दिल काँप उठा।"

अरुण ने उत्सुकता के साथ पूछा—"वह ऐसी कौनसी बात थी?"

गुलशन—"मेरी अम्माँजान से वह कहने लगा, कि जब तुम्हारी लड़की सयानी हो जावे, तो मुझे ख़बर देना। मैं इसके नथ के समय आऊंगा और तुम जैसा कहोगी, वैसा बंदोबस्त कर दूंगा।"

अरुण—"तब तो तुम दक्षिणी हिंदू हो। क्योंकि यह रिवाज़ जहाँ तक मैं समझता हूँ, इधर की मुसलमानियों में नहीं है। पहले जब तुमने अपनी माँ को मंदिर की दासी बताया, तभी मुझे शुबहा हुआ था। तब तुमने अपना नाम गुलशन क्यों रक्खा है?"

गुलशन—"वाह जनाब! अब आप तो बैरिस्टरों से भी बढ़ गए। इस शहर में किसी ने मेरी जाति अबतक नहीं पहचानी थी, आप हीं ने पहले-पहल पहचाना है। हाँ, जब मैंने उस बनिएँ की बात सुनी, तब बहुत दुखी हुई। मैं सोचने लगी कि क्या मेरी शादी न होगी? क्या जो ज्यादा पैसा देगा, उसी के हाथ मुझे अपना शरीर बेचना पड़ेगा। जो मेरे हुस्न और यौवन पर दीवाने होकर अपने पैसे बर्बाद करके मदन-रस पीने आएँगे, उनमें मुहब्बत कहाँ? हाय! मेरी क्या हालत होगी? ऐसे-ही-ऐसे विचार मेरे मन में उठने लगे। एक दिन एक और आदमी आकर नाच-तमाशे के लिये मेरी अम्माँ

से बातें करने लगा। मैं भी पास ही खड़ी थी। वह बात करता था अम्माँ से, लेकिन आँखों से मेरी ही ओर घूर रहा था। वह बेतरह ऐसा मुझे घूरने लगा कि मुझे शर्म के साथ-साथ भय भी जान पड़ा। उस समय मेरी उम्र बारह साल की थी। किंतु अभीतक मैं रजस्वला नहीं हुई थी। मैंने अम्माँ से साफ़ कह दिया कि मैं उसके यहाँ नाचने न जाऊँगी। अम्माँ बहुत नाराज़ हो गईं। उसके जाने के बाद अम्माँ बड़े क्रोध में आकर मुझे मारने लगीं। क्योंकि उस रोज़ साठ रुपए मिलनेवाले थे। मैं भी उस दिन अम्माँ से बिगड़ गई। मैंने क्रोध में अम्माँ से कहा कि तुम अम्माँ होकर मेरे मना करने पर भी साठ रुपए के लिये मार-पीट करती हो; तुम्हें पैसे मुझसे भी ज्यादा प्यारे हैं। जब तुम्हीं मेरे दिल को न देख, रुपयों को प्यार करोगी, तो जो खुद मेरे चाहनेवाले होंगे, वे मेरी क्या हालत करेंगे? बस, आज से मैं किसी जलसे में न जाऊँगी और न किसी की दासी ही बनूंगी। अगर तुम मेरी अम्माँ हो और मेरी तरफ़ से कुछ भी तुम्हारे दिल में मुहब्बत है, तो मेरी शादी कर दो। मैं कभी वेश्या न बनूंगी। मैं मार खाते-खाते मर जाऊंगी, नदी या समुद्र में जाकर डूब मरूंगी, लेकिन वेश्या न बनूंगी। मेरी ये बातें सुनकर उनके हाथ रुक गए। वह चुप हो गईं। मैं भी उस दिन और कुछ न बोली। दूसरे दिन मेरी अम्माँ मुझे गोद में बैठाकर समझाने लगी।

"अम्माँ मुझे समझाने लगी—'देख बच्ची मैं भी वेश्या हूँ; मेरी अम्माँ भी वेश्या थी और तुझे भी वेश्या बनना पड़ेगा। तुम्हारे साथ कोई शादी न करेगा।"

"मैं बीच में ही बोल उठी—'तब तुमने मुझे क्यों पैदा किया?"

"अम्माँ ने कहा—'सुनो तो बेटी ! तू इस बात को जानती है कि वेश्याओं को कितना सुख मिलता है । देश की लड़कियाँ पुरुषों से शादी करती हैं, लेकिन तेरी शादी मंदिर में भगवान् की मूर्ति के साथ होगी । अच्छे-अच्छे इश्कबाज़ तेरे नाज़-नखरों पर अपनी ज़िंदगी तक कुर्बान करेंगे और तेरी आँखों के एक इशारे में तेरे सामने लाखों रुपए का ढेर लग जायगा । जवान मस्त आशिक़ तेरा प्यार करेंगे; कपड़े, ज़ेवर, जवाहिरात सब तेरी एक बात पर दौड़े चले आवेंगे और तूँ रानियों की तरह खाना खाएगी । शादी करने में अगर मुफ़लिसी आई, तब तूँ क्या करेगी ? वेश्या बनने में अगर एक आशिक़ मुफ़लिस हो गया, तो तूँ उसे छोड़, दूसरी सोने की चिड़िया पकड़ सकेगी ।'

"अम्माँ की इस बात पर मैंने बड़े रोब से कहा—"यह सब तो ठीक है, लेकिन पहले यह तो बताओ, कि आदमी को छोड़ कर तुम पत्थर से मेरी शादी क्यों करोगी ? क्या वह पत्थर भी आदमी की तरह मेरा प्यार करेगा ? रुपए और ज़ेवर के बारे में तो यह बात है, कि अगर मैं बूढ़ी हो जाऊं, तब भी वे सब बेवकूफ़ मुझपर मरेंगे और अपने रुपए बर्बाद कर सकेंगे ? अगर ऐसा है, तो तुम भी तो बूढ़ी हो; तुम खुद न कमाकर, मुझे जलसों में रुपए कमाने के लिये क्यों भेजती हो ? ये सब प्यार करनेवाले सफ़ेद चमड़े के आशिक़, यौवन ढलने पर थूकेंगे भी नहीं; लेकिन जो शौहर है, वह चाहे कैसी ही हालत में क्यों न हो, मेरे लिये फ़िक्र करेगा ही । मुझे तेरी बातें मंजूर नहीं ।

"बेटी ! चाहे कुछ भी हो, मैंने तुझे नौ-महीने पेट में रक्खा

है। लड़कपन से अब तक बड़े यत्न के साथ तुझे पाला है। तुझे नाचना और गाना सिखाने में मैंने अपने को बेचकर बहुत रुपए ख़र्च किए हैं। अगर तू ऐसा करेगी, तो मेरी क्या हालत होगी? क्या तुझे अपनी बूढ़ी अम्माँ की ज़रा भी मुहब्बत नहीं है? मुझपर तुझे रहम भी नहीं आता? अगर तू मेरी बेटी है और मुझे अम्माँ समझती है, तो चाहे तुझे कितनी ही तकलीफ़ क्यों न हो, मेरा कहना मानना पड़ेगा; नहीं तो मुझ बूढ़ी की हाय तुझे बहुत हैरान करेगी।' इतना कह अम्माँजान रोने लगी। उनकी आँखों में आँसू देखकर मैं भी रोने लगी।"

"मैंने कहा—"अच्छा! तुम जो कहोगी, मैं वही करूँगी।"

"मैंने जवाब तो दे दिया, लेकिन आजतक मेरे दिल में उस बात का दर्द है, कि मैंने क्यों ऐसा जवाब दिया। क्यों क़बूल किया? यही सब विचार दिन-रात मेरे माथे में चक्कर काटने लगे। आख़िर यह तय पाया, कि मेरी क़िस्मत में जो लिखा है, उसे मिटानेवाला कोई नहीं।

"तेरह साल की उम्र में सयानी यानी रजस्वला होने पर पाँच दिन तक बड़े धूम-धाम से उत्सव मनाए गए। उसी महीने में जलसा भी हुआ, जिसमें बहुतेरी वेश्याएँ फल और मिठाइयों की थालियाँ मेरी नज़र करने को ले आईं। तीन रोज़ तक जलसा होता रहा और मुझे बहुतेरे अच्छे-अच्छे कपड़े भी मिले। इसके बाद शंख और चक्रधारी पत्थर की एक मूरत के साथ मेरी शादी करने का समय आया। एक ब्राह्मण ने यह काम करा दिया। अब नथ उतारने का, जिसे आप लोग 'सोहागरात' कहते हैं—समय आया। जो बनियाँ मेरी अम्माँ से उस दिन के लिये

बातें कर गया था, उसकी याद कर मेरी अम्माँ ने मुझसे पूछा,–'क्यों बेटी ! उस बनिएँ को खत लिखूँ ?'

"मैंने जवाब दिया–'वह तो मेरा बाप होने के लायक़ है।"

"मेरी अम्माँ चुप हो गई। एक ही सप्ताह में प्रति दिन साठ रुपए के ठेके पर अम्माँ के साथ मैं एक जलसे में गाना गाने गई। वहाँ एक धनवान बनिएँ का लड़का आया था। खूब ही रँगीला जवान था, देह गोरी और पतली थी। मुझसे क़रीब दो साल बड़ा था। कपड़े भी अच्छे-अच्छे पहने थे। सिर पर जरी की टोपी पहने हुए था। पान की रच से होंठ लाल-लाल हो रहे थे। वह मेरी तरफ़ एक टक देख रहा था; मेरी भी निगाह उससे लड़ गई। मेरे दिल में एकाएक यह बात आई कि अगर ऐसे सुंदर नवयुवक के साथ मेरी शादी हुई होती, तो कैसा सुख मिलता ? मैंने शर्म से अपनी नज़र फेर ली; लेकिन वह तो मेरी ही तरफ़ देखता रहा। गाना खत्म होते ही मैंने अपनी अम्माँ से यह बात कह दी। वह भी उस जवान को देखकर बहुत खुश हुई। इतने में वह जवान खुद अपने साथी के साथ मेरी अम्माँ के पास आया और बातचीत करने के लिये घर आने का वादा कर गया। कहने की जरूरत नहीं कि सब बातें तय हो गई। मेरे घर उन्होंने पलंग, गद्दा, मसहरी, दो मेज, चार कुर्सियाँ चाँदी के कटोरे, लोटे, रक़ाबी, प्याले, बनारसी और मदुरे की साड़ियाँ, खूबसूरत सलूके, कुछ अच्छे-अच्छे खिलौने वग़ैरह भेज दिए। नित्य गुलाब, जूही, चमेली, मौलिश्री, केवड़ा, चंपा वग़ैरह फूलों के गजरे और गुच्छे आने लगे। सुगंधित तेल आने लगे, हीरे की अँगूठी, हार वग़ैरह जेवर भी आए। कम-से-कम

चार हज़ार रुपए की यह सब चीज़ें आईं। हज़ार रुपए नक़द भी मिले। मैं एक रानी से भी बढ़कर मग़रूर हो गई। वे आनेवाले नवयुवक भी बड़े ही नर्म दिल और शर्मदार आदमी थे। वे मेरी अम्माँ, जो उनकी सास हो चुकी थी, उनसे भी बातें करने में शर्माते थे। उनकी शादी नहीं हुई थी। मैं भी समझती थी, कि यह सुख ज़िंदगी भर रहेगा।

"उस समय मुझे यह भी ग़रूर हुआ, कि मेरी ख़ूबसूरती के आगे यह पाँच हज़ार क्या पाँच लाख भी कोई चीज़ नहीं है। इतना ग़रूर हो गया था, कि अगर वे बेचारे कभी कहते, कि मेरे सिर में दर्द है; तो मैं कहती, कि मैं क्या करूं, नौकर को बुलाकर दबवा लो; यह सुन वे बेचारे चुप रह जाते। लेकिन किसी दिन जो मैं कह बैठती, कि मेरा पैर दुखता है, तो वे दबाने लगते थे। मैं भी बड़े आराम से उनसे पैर दबवाती थी। वे मुझे बहुत प्यार करते थे। इसी तरह आराम से कुछ दिन बीत गए। आख़िर वे अपने देश जाने को तैयार हुए। उस समय भी वे मुझे सौ रुपए माहवार दे रहे थे; लेकिन मेरी अम्माँ को इससे संतोष न हुआ।

"अम्माँ बार-बार यही कहती, कि जब दामाद घर में नहीं, तो इन सौ रुपयों से मेरा क्या होगा? वे होते, तो घर का सब ख़र्च संभालते, इसलिये और कोई आदमी फँसे तो अच्छा है।

"मैंने मना किया। लेकिन अम्माँ कब मानती हैं? एक रोज़ एक आदमी दो घंटे के लिये आया और बीस रुपए दे गया। इसी से मुझे रुपयों की परवाह न हुई; मुझे अपने हुस्न की क़ीमत अधिक जान पड़ी।

"वे अपने देश से लौटकर आए। मुझे गर्भ रह गया। इस बार उनकी भी शादी हो गई थी। मेरा बच्चा छः महीने का होकर मर गया। कैसा चाँद-सा मुखड़ा था।"

गुलशन की आँखों में आँसू झलकने लगे और उसका गला रूँध गया। बार-बार वह ठंढी साँसें लेने लगी।

गुलशन ने फिर कहा—"क्या आपको मेरी इस गलीज़, मुसीबत से भरी कहानी के सुनने में आनंद आता है?"

अरुण ने ग्लानि भरे स्वर में कहा—"अपनी दुःख भरी कहानी सुनाने से तुम्हें जो राहत मिलती है; उसी में मुझे भी आनंद आता है। तुम बेख़ौफ़ कहे चलो; मेरी यह आदत है और यही पसंद है, कि मैं किसी की कहानी सुनकर किसी तरह उसे मदद दे सकूँ। किसी का दुःख दूर कर सकूं।"

शादी हो जाने से उनका मेरे यहाँ आना-जाना बंद हो गया। मेरे सुख का स्वप्न बीत गया। मेरी दूध-मलाई सूख गई। मुझे अपने जीवन के लिये किसी दूसरे आदमी को देखने की ज़रूरत आ पड़ी।"

इसी समय मीनाक्षी ने ख़बर दी—"बाईजी! रमणलाल आए हैं।"

छठाँ परिच्छेद

दूसरे परशुराम

विनोदकांत आफ़िस से निकलकर घर पहुँचा। कपड़े उतार अपनी खुली छत से साबरमती नदी के निर्मल जल की

तरंगों को देखता हुआ कुर्सी पर बैठ गया। इस समय भी उसके माथे में वही स्वयंसेवक और अपने दो के दो लाख बनने का विचार घूम रहा था। रह-रहकर वह बड़बड़ा उठता था—'हम बच्चे हैं भारत के, भारत है हमारा देश।' नदी की तरंगों को देखते-देखते वह भी विचार तरंग में आ गया।

विनोद सोचने लगा—"आहा! अरुण भी कैसा विलक्षण आदमी है! मैं नित्य उसे समाचार-पत्रों में छपे नए-नए समाचार सुनाता हूँ, वह भी मेरे विचारों के साथ मिल जाता है और मन लगाकर सुनता है। उस समय मैं यह समझता, कि अरुण इस नए समाचार से नावाकिफ़ है; किंतु क्षण भर बाद उसपर उसकी आलोचना सुनकर मुझे मालूम होता, कि यह समाचार तो वह मुझसे पहले ही पढ़ चुका है। समझ में नहीं आता, कि वह सब समाचार-पत्र पढ़ता है और उसमें छपे समाचारों को अपने माथे में भर रखता है। मैंने किसी दिन भी उसके हाथ में समाचार-पत्र नहीं देखा। वास्तव में वह मेरे साथ सगे भाई जैसा व्यवहार करता है। मैंने उसे कितनी ही बार अपने घर पर बुलाया, लेकिन वह मेरे घर तो आता नहीं, और मुझे भी अपने घर कभी नहीं ले जाता। मुझे उसके रहने तक का पता नहीं। उसके जीवन में कोई ऐसा गूढ़ रहस्य है, जिसका खुलना मुझे संभव नहीं जान पड़ता। उसके केवल दो शब्दों ने मेरी बुद्धि के कितने ही भ्रम दूर कर दिए हैं। अरे! अगर वह कहीं हृदय खोलकर साफ़-साफ़ बातें करे, तो न जाने कितना ज्ञान प्राप्त हो। किंतु वह अपना विचार कभी प्रकट ही होने नहीं देता। कुछ ही क्यों न हो, यह सही है, कि वह एक प्रतिभाशाली पुरुष है!"

विनोद विचार करते-करते ज़रा रुका। हलकी वायु की लहरों में आँख मूँदकर कुछ देर चुप बैठा रहा। इसके बाद कुछ मन में विचार करता और कुछ बड़बड़ाता हुआ छत पर टहलने लगा।

"उसकी बातें अक्षरशः सत्य जान पड़ती हैं। जब महात्माजी स्वदेशी-प्रचार के लिये बड़े-बड़े उपदेश देते हैं, उनके कहने पर भी कितने उनके ही अनुयायी अब विदेशी माल का व्यवहार करने लग गए हैं। विदेशी-त्याग की दृष्टि से सरकार को अन्यायी समझ उसकी नौकरी छोड़ने और अपना चलता रोज़गार बंद करने के लिये वकील, बैरिस्टर और न्यायाधीश लोग अभी हिम्मत कर ही नहीं सके। इसका कारण ? कदाचित् वे अपने कर्तव्य को न समझते हों अथवा अपना आराम न छोड़ सकते हों। यह विषय अरुण के आगे छेड़ा जाय, तो शायद कुछ समझ में आवे; बस।" कुछ चुप रहने के बाद एकाएक किसी बात के याद आने की तरह बोल उठा—"किंतु मैंने कभी भी उसे सत्याग्रह-आश्रम की ओर महात्माजी के दर्शनार्थ जाते नहीं देखा। कभी उनके उपदेशों की चर्चा करते भी नहीं सुना; यह क्या बात है ? ठीक, यह भी पूछना चाहिए।"

"आहा! कैसा मधुर गाना है! कैसा उपदेश है! कैसी देश-भक्ति है!"

"हम बच्चे हैं भारत के; भारत है हमारा देश।"

कैसा हृदयग्राही उत्तेजनापूर्ण है! कवि का हृदय उस समय कैसा प्रेममय और रसमय हो गया होगा। यह तो सीखने लायक है।"

ऐसा ही विचार करता हुआ वह अपने कमरे में आकर

"राष्ट्रहृदयोद्गार" नाम की छोटी-सी किताब उठा, उसमें-से भारतीय वीरगान निकाल कर गाने लगा:—

राष्ट्रीय गान

हिंदू, मुसलिम, सिक्ख, ईसाई, सब ही मिलकर आवें।
दुनियाँ में गौरवशाली भारत की महिमा गावें॥
दिल-से-दिल हिल-मिल सब कोई सत्याग्रह को धावें।
भारत मैया के उद्धारक हम सब ही बन जावें॥
पैदा हैं हम भारत से, इस मिट्टी का है यह वेश।
हम बच्चे हैं भारत के, भारत है हमारा देश॥
नौकरशाही तोप, ऐरोप्लेन रौलट-बिल चल जाय।
आई॰पी॰सी;सी॰पी॰सी-सी॰ए॰ए॰प्रेस-एक्ट मिल जाय॥
इंटर्नमेंट, एष्टर्नमेंट आर्डर बल्कि छुट जाय।
फिर भी हम बच्चे भारत के कैसे क्यों हट जाँय॥
पैदा हैं हम भारत से, इस मिट्टी का है यह वेश।
हम बच्चे हैं भारत के, भारत है हमारा देश॥

विनोद ने एक बार, दो बार, चार बार गाया; बहुत कुछ याद भी हो गया। पुस्तक बंद करने पर भी हृदय में वही धुन बंधी रही। इतने में भोजन की बुलाहट हुई; लेकिन उसके पैर इस तरह पड़ने लगे, मानो वह स्वयंसेवकों की सैन्य में पैर मिलाकर चल रहा हो। हमेशा वह घूमने जाता था, किंतु आज भोजन के बाद उसकी टहलने की इच्छा नहीं हुई। भोजन के बाद वह फिर अपने कमरे में आकर बैठ गया। किसी ने आवाज़ दी, वह ध्यान देकर सुनने लगा:—

"विनोद! अजी विनोद!"

विनोद ने पूछा—"कौन है !"

"मैं हूँ–जगन्नाथ !"

कहते-कहते जगन्नाथ कमरे में आ पहुँचा। जगन्नाथ झरिया की किसी कोयले की खान के साहब का असिस्टेंट खज़ाँची था। सहपाठी होने की वजह से इसमें और जगन्नाथ में बड़ी बनती थी। जगन्नाथ के आते ही उससे हाथ मिलाकर विनोद ने कहा:—

"वाह भाई जगन्नाथ! आज तुम एकाएक कहाँ से आ पड़े ? क्योंजी, कब आए? भाभी अच्छी तरह तो हैं? क्या अकेले आए हो, सामान कहाँ है ?"

"धीरज धरो भाई! धीरज धरो।" कहकर जगन्नाथ ने हँसते-हँसते कुर्सी पर बैठकर कहा— 'एक-एक प्रश्न करो, तो जवाब भी दूँ। कोयले की कालिमा से मेरा दिमाग़ इतना मैला और काला पड़ गया है, कि मुझे कुछ याद ही नहीं रहता।" दोनों मिलकर इस बात पर खूब ठहाटा मारकर हँस पड़े।

जगन्नाथ ने कहा—"मैं अभी ही गाड़ी से उतरकर चला आ रहा हूँ। तुम्हारी भाभी अच्छी तरह से हैं। वह अपने पिता के घर पर है। मैं अकेला ही आया हूँ। मेरे सामान में केवल एक हैंड-बेग ही है। उसे मैं नीचे रख आया हूँ। अब तुम अपना समाचार कहो।"

"अपनी बात मैं फिर कहूँगा; पहले स्नान करके भोजन तो करो।" इतना कहकर विनोद ने उसका सब बंदोबस्त कर दिया। भोजन के उपरांत दोनों फिर बात में लग गए। इधर-उधर की बात करने के बाद विनोद ने जगन्नाथ से पूछा—"जगन्नाथ !

कितने दिन की छुट्टी मिली है? अब तो कुछ दिन रहोगे न?"

जगन्नाथ—"अब तो मुझे यहाँ ही रहना है। नौकरी करने की ज़रूरत नहीं, अब तो मुझे अलग स्वतंत्र जीवन बनाना है।"

विनोद—"क्यों, क्या नौकरी छोड़ दी? क्या हुआ? इस तरह एकाएक।"

जगन्नाथ—"सुनो तो सही। यह तो तुम जानते ही हो, कि मेरा साहब विचित्र आदमी है। वह तो मैं ही था, जो निबाहे जाता था। क्योंकि मेरी तनख़्वाह सौ रुपए थी। लेकिन एक दिन मेरा माथा भी कुछ गर्म हो गया। मुझसे सहा न गया और मैंने इस्तीफ़ा दे दिया।"

विनोद—"ऐसी कौनसी बात थी? तुम्हारे जैसा सहनशील मनुष्य क्रोध में आ जाय, इसका क्या कारण!"

जगन्नाथ—"एक दिन तुम्हारी भाभी को बहुत ज़ोर से बुख़ार आगया था, घर की रसोई-आदि का काम मुझे करना पड़ा। उस पर मेरे संध्या-पूजा आदि के नियमों को तुम जानते ही हो। मैं आफ़िस में छुट्टी के लिये अर्ज़ी भेज, स्नान कर संध्या करने बैठा। उस समय करीब आठ बजे थे। मेरी स्त्री बुख़ार में बेहोश चारपाई पर पड़ी थी; चूल्हे पर दाल रक्खी थी। इसी समय साहब मेरे घर आया। मैं संध्या करने की वजह से उसकी ओर कुछ ध्यान न दे सका। उसके पाँच मिनट ख़राब गए, मैं संध्या से उठकर साहब की ओर बढ़ा; किंतु इतने ही में वह क्रोध में आकर बोला, 'You Indians have no manners at all. I am waiting so long, but you never care to welcome me. You must appologise for your such kind of

insolence." (तुम हिंदुस्थानियों को बिलकुल तमीज़ नहीं । मैं कब से खड़ा हूँ, लेकिन मेरे सत्कार की तुम्हें कुछ भी जरूरत न जान पड़ी । इस बेअदबी के लिये तुम्हें माफ़ी माँगना चाहिए ।)

मैंने उसके सामने डटकर कहा—" I am not your servant here. I am the king of my cottage. You can not utter anything in such manners at this place." (मैं यहाँ तुम्हारा नौकर नहीं हूँ । मैं अपनी झोंपड़ी का बादशाह हूँ; यहाँ तुम मुझे इस तरह कुछ भी नहीं कह सकते।)

उसने पूछा—"Why did'nt you attend the office in time ?" (आफ़िस में समय पर क्यों हाज़िर नहीं हुए ?)

मैंने कहा—"मैंने छुट्टी के लिये अर्ज़ी भेज दी है । मेरी स्त्री सख़्त बीमार है, इसलिये मैं नहीं आ सका ।"

"तुम हिंदुओं की ऐसी-वैसी औरतों का क्या ? तुम्हारे-जैसे बेवकूफ़ जंगली देश के—"

बस, इतना सुनते ही मेरा मिजाज़ बिगड़ गया । मैंने तुरंत जवाब दिया—"गोरे चमड़े के कुत्ते, ज़बान सँभालकर बोल । पतिव्रता हिंदू रमणियों के बारे में ये शब्द ?"

अब क्या पूछना था, उसका भी मिजाज़ चढ़ गया । उसने कहा—" I shall see you insolent brute.' (तेरे जैसे बेअदब की मैं ख़बर लूंगा ।)

"मुझे इतना क्रोध आया, कि मैं जिस हालत में खड़ा था, उसी हालत में जूता उठाकर उसे मारने दौड़ा ।"

विनोद—"वाहवा ! कैसा मज़ेदार दृश्य था । एक गोरा साहब हाथ में टोपी लिए भागा जाता होगा और उसके पीछे-पीछे तुम्हारे

जैसा शरीर से बलवान हृष्ट-पुष्ट मस्त साँढ़-सा ब्राह्मण धोती की काँछ मार, माथे, गले और हाथ तथा छाती पर भस्म लपेटे, हाथ में गदा की जगह जूता ताने, लाल-लाल आँखें किए, झरिया की खान का भीम ! फिर क्या पूछना था ?"

विनोद के ऐसा कहते ही दोनों खूब ज़ोर से ठहाटा मारकर हँस पड़े । कुछ ठहरकर जगन्नाथ ने फिर कहना आरंभ किया—

"सचमुच वह दृश्य देखने ही लायक़ था । साहब आगे-आगे भागा जाता था और मैं 'खड़ा रह, खड़ा रह' कहता हुआ उसके पीछे जूता फेंक-फेंककर दौड़ रहा था । साहब ने अपने बँगले में पहुँचकर भीतर से दरवाज़ा बंद कर लिया; मैंने आकर खूब दरवाज़ा पीटा । घर के नौकर-चाकर भी सन्नाटे में आ गए । न कोई दरवाज़ा ही खोलता था और न बाहर ही निकलता था । थोड़ी देर बाद मेडम ने खिड़की खोलकर मुझे बुलाया । मैंने कहा, कि तुम्हें कोई किसी प्रकार का भय नहीं है, तुम बाहर आ सकती हो । मेम बाहर आई। उसने मुझे शांत करते हुए पूछा, कि क्या बात है ?"

मैं उससे कहने लगा—"हम लोगों में तुम लोगों की तरह तिलाक करने की प्रथा नहीं है । हमारे यहाँ स्त्री-पुरुष मित्र का-सा बर्ताव नहीं करते । हिंदू औरतें पतिव्रता होती हैं और सिवा पति-सेवा के और किसी तरफ़ भी उनका ध्यान नहीं जाता । उसपर मैं भी एक पत्नीव्रत रखता हूँ । हमारे सामने ऐसे शब्द ? क्या बताऊँ, साहब भागकर बच गए, नहीं तो मैं उन्हें वहीं ठीक कर देता ।"

उसने मुझसे कहा—'जगन्नाथ शांत हो ! यह साहब की

भूल है। अब तुम्हें कोई कुछ न कहेगा। जब तक तुम्हारी स्त्री अच्छी न हो, तब तक तुम काम करने न आना।'

"मैं घर लौट आया। तुम्हारी भाभी बेचारी बड़ी चिंता में पड़ी थीं। लेकिन जब मैंने साहब के डरने और छिप जाने की बात कही, तब वह खूब हँसी। ठीक साढ़े दस बजे एक सिपाही एक चिट्ठी लेकर आया। मैं जो समझता था, वही हुआ। प्यून-बुक पर बिना दस्तख़त किए ही चिट्ठी ले ली। वह मुझे नौकरी से बर्खास्त करने का परवाना था। उसी के साथ आठ दिन में रहने का मकान भी ख़ाली कर देने की सूचना दी थी। मैंने सिपाही से कहा,—'जा, साहब से कह दे कि जब तक मेरी स्त्री अच्छी न हो जायगी, तब तक मैं यह मकान ख़ाली न करूंगा और जब ख़ाली करके घर जाऊँगा, तब तक की तनख़ाह भी लूँगा।' सिपाही चला गया, साहब कुछ भी नहीं बोला। ठीक डेढ़ महीने में मेरी स्त्री अच्छी हुई। मैंने भी कहला दिया, कि आज मैं तनख़ाह लेने आऊँगा और कल मकान ख़ाली कर दूंगा।"

"बेचारे साहब ने उस दिन तक की तनख़ाह ठीक लगा रक्खी थी। हेड-क्लार्क को तनख़ाह देकर मेरे पहुँचने से पहले ही साहब अपने मकान को चला गया। और कह गया था, कि मुझसे किसी प्रकार का झगड़ा न करना। जैसे हो मुझे तनख़ाह देकर बिदा करना और मुझे उसकी ख़बर देना, तब मैं आफ़िस में आऊंगा।

विनोद ने हँसते-हँसते कहा—"वाहवा! इतना भय?"

जगन्नाथ—"मैंने तनख़ाह लेने के बाद झरिया से यहाँ तक का किराया भी माँगा। मुझे किराया भी मिल गया, मैं यहाँ चला आया। यही मेरी कहानी है।"

बात समाप्त होने के बाद दोनों खूब हँसे। विनोद ने जगन्नाथ की पीठ ठोंककर कहा—"वाह यार! मैं बहुत खुश हुआ। साहब को तुमने हिंदू जाति के आदर्श का अच्छा ज्ञान कराया। अहा! उस समय तुम देखने में दूसरे परशुराम ही दिखाई पड़ते होगे।"

सातवाँ परिच्छेद

गुलशन की कहानी

"कह दे, कि मेरी तबीयत ठीक नहीं।" गुलशन का जवाब सुनकर मीनाक्षी चली गई। वह गुलशन के स्वभाव को अच्छी तरह समझती थी। वह जानती थी, कि एक बार उसके मुँह से नहीं निकलने पर, फिर वह हाँ करती ही नहीं। बेचारा रमणलाल जाने के समय मुँह लटकाकर मीनाक्षी के हाथ में पाँच सौ रुपए का एक नोट देता गया।

मीनाक्षी के चले जाने पर फिर गुलशन ने अपनी कहानी इस प्रकार शुरू की?

"उस समय फिर एक आदमी मिल गया। वह भी आदमी अच्छा था। उसके दिल में कुछ मुहब्बत भी थी। परंतु मेरा दिल सूख गया था। इतनी मुहब्बत करनेवाला भी शादी होने पर मुझे छोड़कर चला गया; इससे मेरा दिल किसी से भी मुहब्बत न करने की सीख देने लगा। मैं बहुत बेदिल हो गई थी; लेकिन ज़िंदगी बसर करने के लिये मुझे उस दूसरे आदमी को

क़बूल करना पड़ा। यह भी मिलनसार था। मेरे लिये रुपए भी ख़ूब ख़र्च करता था। नाटक-तमाशे में हम दोनों साथ ही जाते थे। उनकी शादी नहीं हुई थी; इसीसे मेरे दिल को कुछ धीरज थी। धीरे-धीरे मैं भी उन्हें प्यार करने लगी। दोनों का दिल मिल गया। कुछ दिन में उनकी शादी का भी पैग़ाम आया। उनके दिल में यह ख़याल आया, कि अगर शादी की ख़बर होगी, तो मैं नाराज़ हो जाऊँगी, मेरा कलेजा फट जायगा। इससे उन्होंने मुझसे छिपाकर शादी कर ली। शादी करने पर भी वह मेरे यहाँ वैसे ही बराबर आते-जाते थे। कुछ ही दिन में मुझे किसी-न-किसी तरह शादी की ख़बर लग गई। मैं बहुत नाख़ुश हुई। एक दिन मैंने उनसे साफ़-साफ़ कह दिया।

"अब आप मेरे घर न आया करें। आपकी शादी हो गई; इसलिये अब यहाँ आने की कोई ज़रूरत नहीं है।"

वे मुझे शांत करते हुए बोले—"मैंने शादी किया, तो इसमें तुम्हारा क्या नुक़सान है? अब भी तो मैं पहले ही की तरह आता हूँ। ख़र्च भी पहले से अधिक देता हूँ, कि तुम्हें किसीप्रकार का रंज न हो।"

मैंने कहा—"आपने इस तरह अपनी शादी की है, जिससे मेरा रंज और भी बढ़ गया है। इससे अच्छा था कि, आप मुझसे पूछकर शादी करते; मैं भी शादी की ख़ुशी मनाती। इस ख़बर के छिपाने से साफ़ जाहिर होता है, कि आपकी मुहब्बत पाक नहीं है। आज एक बात छिपाई है, तो कल दूसरी भी छिपाएँगे, मेरे नाराज़ होने के ख़याल से आप हमेशा मेरे पास आते हैं सही, लेकिन सोचिए कि आपकी औरत के दिल में इसका

कितना दर्द होता होगा ? वह मुझे कितनी गालियाँ देती होगी। अगर मैं आपसे यह कहूँ, कि आप हफ़्ते में दो-तीन रोज़ मेरे घर आया करें, तब भी अकेले में मेरे दिल में यही बात खटकेगी, कि आपने मुझसे बिना पूछे शादी करली। इससे मेरा रंज छूटने की जगह और भी बढ़ेगा। अगर आप पहले कह देते, तो मैं यह समझती, कि मैंने ही तो आपकी शादी कराई है; इससे मेरे दिल को भी राहत मिलती। आप चाहे हमेशा ही मेरे घर रहना चाहें, फिर भी अब मैं राज़ी नहीं। क्योंकि आपके लिए मुझ कमतरीन वेश्या को जितना ग़म होगा, वह उस पाकदामन औरत के ग़म के आगे, जिसका आप पर हक़ है—अख़्तियार है—बिलकुल तुच्छ होगा। मेरी ज़िंदगी तो इस तरह बीतती ही है, लेकिन मैं उस बेचारी को दुखी नहीं बनाना चाहती। इसलिये अब कल से आप न आइएगा।"

अरुण बोल उठा—"शाबाश! शाबाश!! शाबाश!!! गुलशन! तुम्हारे-जैसी वेश्या इस ज़माने में मिलना कठिन है।"

गुलशन—"उन्होंने मेरी अम्माँ से कुछ कहा, लेकिन मैंने सुना नहीं। आह! उस वक़्त स्वार्थ की वजह से कुछ दिखाई नहीं देता; बाद को ही मालूम होता है, कि ख़ुदग़र्ज़ी कैसी चीज़ है। उस समय मेरी उम्र सोलह साल की थी; इससे दिल में बहुत हिम्मत थी। उनके जाने के बाद एक आए, एक गए, होते-होते छः महीने बीत गए। इस बीच में मैंने समझ लिया, कि इस दुनियाँ में हम वेश्याओं के लिये मुहब्बत के नाम से कोई चीज़ नहीं है। सब अपनी-ही-अपनी ख़ुदग़र्ज़ी में हैं। अब मैं कुछ पैसे की क़ीमत समझने लगी; लेकिन बचपन से दूध-मलाई खाते और अच्छे-अच्छे

कपड़े पहनने की वजह से मेरे पास कुछ बचता न था। हाथ में रुपए आते ही दो हाथियों का बल आता और हाथ ख़ाली होने पर मुफ़लिस से भी बुरा हाल हो जाता था। मुझपर कैसी ही मुसीबत क्यों न पड़ती, मुझे उसका ज़रा भी रंज न होता था। सच्ची मुहब्बत के लिये मैं तरस रही थी। इसी तरह कुछ दिन बीतने के बाद एक दिन एक मामूली आदमी से मुलाक़ात हुई। वह बेचारा ग़रीब था। रोज़ दिन भर कपड़े की फेरी करता और शाम तक दो-तीन रुपए कमा लेता था। उनकी माँ और बहिन थीं; औरत मर गई थी। वह मेरे ही घर रहता और जो कुछ कमाता, वह मेरे ही हाथ में देता था; अपने घर कुछ न देता था। महीने में पचास-साठ रुपए मिल जाते थे। कभी ज्यादा भी मिल जाते थे। उसकी अम्माँ भी मेरे घर आती और मैं उनके ख़र्च के लिये कुछ रुपए दे देती थी। हाँ, ख़ूब याद आया! मैं एक बात तो भूल ही गई। ज़ब वह पहला आदमी छोड़कर चला गया था, उसके कुछ दिन बाद मेरी अम्माँ और मौसी–दोनों बहिनों के झगड़े में हमारा मकान बिक गया था। अब हम किराए के एक मकान में रहती थीं। इस आदमी से मेरे दो बच्चे पैदा हुए, वह दोनों ही छोटे-ही-छोटे मर गए। बच्चे होने के बाद से मेरा प्रेम उसपर बढ़ गया। एक दिन हम दोनों ने मिलकर क़सम खा ली, कि जिंदगी भर एक-दूसरे को न छोड़ेंगे और कभी आपस में विश्वासघात न करेंगे—यानी किसी दूसरी औरत की तरफ़ वे निगाह न उठा सकेंगे और किसी ग़ैर मर्द की तरफ़ मैं भी न देख सकूंगी। इस क़सम से मुझे बड़ी राहत मिली। बरसात के मौसिम में वे फ़ेरी करने नहीं जाते थे; उन दिनों मैं

अपने जेवर बेचकर घर का ख़र्च चलाती थी। इस तरह तीन साल गुज़र गए। इसी बीच में मेरी अम्माँ भी मर गईं; मुझे बहुत सदमा हुआ। अब उनके सिवा दुनियाँ में मेरा कोई भी न रह गया। मैं उनकी गोद में पड़ी-पड़ी रोती थी। उनकी क्रिया और बरसी के ख़र्च में मेरे सब ज़ेवर बिक गए। मैं मुफ़लिस हो गई। उनका भी रोजगार बहुत मंदा पड़ गया। कभी आठ आने और कभी चार आने आने लगे। इस हालत में मैंने अपने घर के तमाम फ़रनीचर और बर्तन आदि बेच दिए। मेरे पास सिर्फ़ एक पलंग, एक तिपाई, एक लोटा, एक डेगर्चा और एक टिफ़िन-कैरियर के सिवा और कुछ भी न रह गया। ज़ेवरों में हाथ की सोने की तीन-तीन चूड़ियाँ, कड़े, दो लौंग; जिन्हें हम लोग कमल कहते हैं, दो नथ, पाँव के चाँदी के साँकड़े के सिवा और कुछ भी न रह गया था। इस हालत में भी मैं ख़ुश थी। लेकिन हाय! इस ज़माने में किसपर ऐतबार किया जाय? वे एक दिन रोज़गार के लिये कहकर शहर से बाहर गए। वहाँ एक वेश्या के यहाँ होकर आए। मुझे यह बात मालूम हो गई। मुझे बहुत रंज हुआ। हम दोनों ने मिलकर क़सम खाई थी, उसके लिये मैंने अपने जेवर, जवाहिरात, बर्तन, यहाँ तक कि सब कुछ बेच दिया था। मैं मुफ़लिस-मोहताज़ हो गई, फिर भी वह आदमी इतना बेवफ़ा निकल गया! इस ख़याल से मैं रात-दिन बेचैन होने लगी। उनके आने पर मैंने इस प्रकार उनसे बातें छेड़ीं—

"क्योंजी! तुमने क़सम खाकर फिर वैसा काम किया?"

उन्होंने जवाब दिया—"नहीं, मैंने तो कुछ भी नहीं किया!"

"क्या तुम सच कह रहे हो ? मैं उसी वेश्या के मुँह से सब बातें कहला दूंगी। नहीं तो सच बता दो।"

बड़े विचार में पड़कर वे बोले—"हाँ, मुझसे भूल हो गई। अब माफ़ करो।"

मैं—"ठीक है, अब मुझे भी क़सम से छुटकारा मिल गया। अब तुम मुझे दोषी न बनाना।"

इस बात को तीन महीने बीत गए। एक दिन उनके एक दोस्त उनसे मिलने आए। उन्होंने मुझसे कहा, कि मेरे दोस्त के लिये कोई वेश्या ठीक कर दो। मैंने चौदह साल की एक लड़की से उनकी मुलाक़ात करा दो। लेकिन उन्होंने कहा, कि यह उतनी खूबसूरत नहीं है, इसलिये मुझे पसंद नहीं। मेरे एक और दोस्त हैं, उन्हें मैं ले आऊँगा। यह कहकर वे चले गए। इस आदमी का बाप रोज़गारी था। लेकिन इनके हाथ में रुपए नहीं थे। क्योंकि इनका एक बड़ा भाई सब काम सँभालता था। यह आदमी दो-तीन रोज़ तक उनके साथ मेरे घर आता रहा! पाँच-छः रोज़ के बाद एक दिन वह दोस्त अपने साथ ज्योतिप्रकाश नामक एक आदमी को साथ ले मेरे यहाँ आया। मैंने उस लड़की को बुलवाया। तीस रुपए माहवार पर वह ठीक हो गई। ज्योतिप्रकाश दीनलता नामक उस लड़की के घर चले गए।

"जब तनख़ाह की बात चल रही थी, उस समय मैं ज्योतिप्रकाश की तरफ़ चुपके-चुपके देखती जाती थी। वे खूबसूरत होने पर भी गंभीर थे। आँखों पर चश्मा लगाए हुए थे। वे इस तरह देखते थे कि किसीको मालूम न होता, कि किधर

देख रहे हैं । मुझे उनका चेहरा देखने की ख्वाहिश हुई । वे पलँग पर बैठे थे, पलँग की बगल में जो तिपाई थी, उसपर रक्खी हुई सुपारी लेने के लिये मैं नज़दीक गई । मैंने तिरछी नज़र से देखा कि वे भी चश्मे की ओट से मेरी ही तरफ़ देख रहे हैं । बस, हो चुका । उनकी लुटेरी आँखों ने मुझे लूट लिया । लेकिन मेरा खैल वहीं बैठा था, मैं चुपचाप वहाँ से हट गई ।

"करीब आठ रोज़ के बाद मेरा आदमी रोज़गार के लिये बाहर गया । उनका दोस्त जो ज्योतिप्रकाश को ले आया था, वह मेरे घर आया ।

मैंने उनसे कहा—' आपके दोस्त वहाँ तो आराम से हैं ? '

उसने जवाब दिया—' कुछ वैसा तो आराम नहीं । वे कहते थे, कि जब उस लड़की को रुपयों की ज़रूरत पड़ती है, तब वह अच्छी तरह बातें करती है, लेकिन जब ज़रूरत नहीं रहती, तब गोबर की तरह बैठी रहती । '

मैंने कहा—' राम ! राम !! मैंने ही ठीक कराया और उन्हें आराम नहीं; यह मेरे लिये बड़े शर्म की बात है । '

वह आदमी मेरी दिल्लगी उड़ाता हुआ बोल उठा—' तब तो आपको ही उन्हें आराम देना चाहिए । '

मैं—' हाँ, आप अपने दोस्त से कहिएगा कि ज़रा मुझसे मिल लें । '

वे—' नहीं, वे ऐसे आदमी नहीं हैं, कि कहते ही सीधे आपके पास चले आवेंगे, मैं उन्हें समझाऊँगा, तब वे आवेंगे । '

मैंने उनसे आग्रह किया—'तो आप समझा दीजिएगा ।'

वे—' इससे मुझे फ़ायदा ? उनके आने से आप मुझे तो प्यार करेंगी ही नहीं ? '

मैं—' अब भी तो प्यार नहीं करती ? इतने दिन आते हुए, क्या एक दिन भी मैंने आपसे दिल्लगी की है। ऐसा विचार ही छोड़ दीजिए। आप उनसे ज़रूर मेरी बातें कह दीजिएगा। "

वे—'मैं कह दूंगा; लेकिन मेरे लिये ?'

मैं—' नहीं, आपको कहने की ज़रूरत नहीं, मैं ख़ुद ही कहला दूँगी ? "

वे–' तुम चाहे कितना ही क्यों न कहलाओ; वे तुम्हारे यहाँ आवेंगे ही नहीं। मैं कहूंगा, तभी आवेंगे। '

मैं–' अच्छा, मैं देखूंगी, कि वे कभी आते हैं या नहीं। '

वे–' अगर आए, तो मेरा सर और आपकी जूती। '

वे–' अच्छा, दिखा दूंगी। '

फिर वे चले गए। इनकी बातों से मुझे बड़ी तकलीफ़ हुई। मैंने उस दीनलता की अम्माँ को बुलाकर कहा–" मेरे आदमी ने बाहर से ख़त भेजा है। उसमें ज्योतिप्रकाश के लिये भी कुछ लिखा है। इसलिये उन्हें ज़रा मेरे घर भेज देना। "

बुढ़िया चली गई। तीन रोज़ बीत जाने पर भी ज्योतिप्रकाश मेरे घर नहीं आए। मैं बहुत दुखी होने लगी। मैंने फिर बुढ़िया को बुलाकर कहा। उसी रात वे आठ बजे मेरे घर आए। मैंने उनसे बात छेड़ी। "

आठवाँ परिच्छेद

क्या बातों में ही मज़ा है ?

आर्यललनाओं का प्रणय वाग्विलास नहीं कहलाता

जब तक मनुष्य पर विपत्ति नहीं आती, तब तक वह उसे नहीं पहचानता। दिन में चार बार अच्छे-अच्छे माल खानेवाले भूखे मरते ग़रीबों का दुःख कैसे समझ सकते हैं ? अभिमानी धनियों की एक-एक पाई के लिये गली-गली फिरनेवाले, या मेहनत मज़दूरी कर लोहे को भी पानी बनानेवाले मज़दूरों की स्थिति-को कौन गिनता है ? अपने शौक़ के लिये हज़ारों रुपए ख़र्च कर, धूम मचा देनेवाले लोग ग़रीब नौकर को एक रुपया भी देते मरे जाते हैं। अख़बारों में अपना नाम छपाने का हौसला रखनेवाले बड़े-बडे फंडों में लाखों रुपए भेजते हैं। किंतु, अपने दरवाज़े पर भूख होने के कारण कंठगत-प्राण ग़रीबों या शीत की वजह अकड़े हुए अथवा बीमार कंगाल भाइयों के लिये एक पाई भी ख़र्च करना नहीं चाहते। "हमारा देश, हमारा देश" की चीख़ मारने और अपने को बहुत ऊँचे कर्त्तव्य पर आरूढ़ समझने वाले यह विचार भी नहीं करते, कि ग़रीब किसान की क्या दशा है ? बड़ी-बड़ी कोठियाँ चलाकर करोड़ों का हेर-फेर करनेवाले महाजन लोग भी ग़रीबों के ख़ून को पानी बनाते हुए अपने रुपए पैदा करते हैं, लेकिन पानी जैसे ख़ून को ख़ून बनाने की ज़रूरत नहीं देखते। केवल मेरा काम करो, चाहे तुम चूल्हे में पड़ो या भाड़ में; उनको इसकी क्या परवाह ? ऐसे विचार के धनवान जहाँ हों,

जिन्हें गरीब मज़दूरों और अपनी स्थिति का खयाल न हो, राज्य के परिचालक अपना कर वसूल करने और खज़ाना तर रखने में चैतन्य हों, जहाँ की प्रजा यह न जानती हो, कि नियम कैसे होने चाहिए और राज्यपरिचालक कैसे हैं, प्रजा के हित में राज्य का कितना ध्यान है, जिसका राज-दरबार में विचार न होता हो, वहाँ की प्रजा की उन्नति कैसे हो ? उन्नति की आशा भी कैसे की जा सकती है ?

सेठ माधवलाल का हृदय और रणछोड़ की बातें आप आगे सुन ही चुके हैं। उसी प्रकार मदनराय और ऊषा के हृदय का परिचय भी आपको मिल चुका है। अब आप रणछोड़ की ओर चलिए। रणछोड़ ने घर में पहुँचते ही पहले रग्घू को गोद में उठा लिया। इसके बाद वह अपनी प्यारी पत्नी के पास बैठ, उसके चेहरे पर हाथ फेरता हुआ, इस प्रकार धीरज देने लगा—

"अब कोई चिंता नहीं। आज ईश्वर ने अपनी मदद की है। बताओ तुम अब कैसी हो ? यह ज़रा शांत हो, तो मैं दूध लाकर साबूदाना बना दूँ। आज तुम बहुत कमज़ोर होगई हो। आज मुझे बड़ा दुःख हो रहा है।"

दया ने धीमी स्वर से कहा—"आप आगए ? आइए मेरे पास बैठिए।"

रणछोड़—"मुझे आज छुट्टी मिल गई है; नौकरी पर नहीं जाना है। तूँ ज़रा पाँच मिनट ठहर जा, तो मैं साबूदाना तैयार कर ले आऊँ।"

दया—"दूध तो है ही नहीं, साबूदाना कैसे बनाइएगा ?"

रणछोड़—"आज हमलोगों पर ईश्वर ने दया की है, और

मुझे अचानक मदद दी है। वह सब बातें फिर कहूँगा । अब मैं दूध लाता हूँ और साबूदाना तैयारकर तुम्हें देता हूँ।

दया—"अपनी पड़ोसिन को दे दीजिएगा, तो वह बेचारी बनाकर दे देगी।"

रणछोड़ बाहर चला गया। उसे गए एक-ही-दो मिनट हुए होंगे, एकाएक एक आदमी के साथ डाक्टर और एक दाई —यह घर में दाखिल हुए। दया इन अनजान आदमियों को देख घबड़ा गई। बालक रघू इन रोबीले आदमियों और स्त्री को देख घबड़ा कर रोने लगा। आनेवाले आदमी ने उस लड़के को गोद में उठाकर धीरज देते हुए कहा—"बच्चे रोओ मत ! ले, अंगूर खाएगा ?"

बालक के हाथ में अंगूर देकर उसने दया की ओर घूमकर कहा—"बहिन ! मुझे तुम अपना भाई समझना; इन डाक्टर साहब को नाड़ी तो दिखला दो।"

दया—"मुझे दवा की कुछ भी ज़रूरत नहीं है।"

आगंतुक ने धीरज देते हुए कहा—"इनकी फ़ीस दी जा चुकी है। तुम्हें कुछ भी देना न पड़ेगा। फ़क़त नाड़ी दिखा दो, मैं दवा लाकर दे जाऊँगा। यह दाई गुजराती जानती है; यह रात दिन तुम्हारे पास रहेगी और तुम्हारी सेवा करेगी। तुम घबड़ाओ नहीं, बहुत जल्द अच्छी हो जाओगी।"

दया ने अपनी नब्ज़ दिखाई। डाक्टर ने फेफड़े की परीक्षा की, इसके बाद नुक़सा लिखकर उस आनेवाले आदमी के हाथ में दे दिया। डाक्टर ने बीमारी साध्य बतलाया। आनेवाले ने

दया के समीप अंगूर, सेव, अनार, नारंगी और सोडे की बोतलें रखते हुए कहा;—

"बहिन ! मैं डाक्टर साहब के साथ जाकर दवा लिए आता हूँ। यह मेवे तुम्हारेखाने के लिये हैं और यह साबूदाना पीने के लिये है।"

दया—"भैया ! उनके आने तक आप बैठ जाइए !"

वह—"मैं अभी ही दवा लेकर आता हूँ।"

दया—"और यह दाई ?"

वह—"ये तो यहीं रहेंगी और तुम्हारी सेवा करेंगी।"

दया ने संदेहपूर्ण आवाज़ में कहा—"लोग कहते हैं, कि यह दाइयाँ रोगी के पास किसी को आने नहीं देतीं।"

उस आदमी ने समझाकर कहा—"यह तो सच है। क्योंकि बीमार को देखने आनेवाले आपस में बहुत शोरगुल किया करते हैं और रोगी को सोने नहीं देते। इसीलिये यह सब दाइयाँ रोगी के पास किसी को भी आने नहीं देतीं।"

दया—"तब तो इस दाई की कोई भी ज़रूरत नहीं है। इन्हें जाने दो।"

वह—"क्यों बहिन ? यह प्रबंध तो अच्छा है।"

दया—"मेरे इकलौते बच्चे और मेरे जीवन-आधार को मेरे पास आने न दे, तो ऐसी दाई किस काम की और किस काम की ऐसी दवा। तुम्हारी इस विलायती दवा के बदले मेरे पति के प्रेम की थपकियाँ और उनकी अमृत-भरी दृष्टि मुझे जल्द आराम करेगी।"

आर्यरमणी ! तुम धन्य हो ! तुम्हारी पति-भक्ति धन्य है।
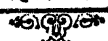
आर्य-ललनाओंके अगाध प्रेम का जोड़ा सारी दुनियाँ में मिलना कठिन है। अहा! अपने जीवन के साथी स्वास्थ्य को सुधारने के लिये दवा के बदले पति की अमृत-भरी दृष्टि और शरीर पर फिरते हुए हाथोंकी थपकियाँ बहुत प्रिय होती हैं। ऐसी ही रमणियों के पुण्य से भारतवर्ष गौरवशाली हो रहा है। कहाँ-योरोप की स्वार्थी ललनाएँ और कहाँ हमारी ये पतिव्रता आर्यनारियाँ!

डाक्डर, दाई और वह आदमी—तीनों ही उसकी इस प्रकार बातें सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। डाक्टर ने उस आदमी के हाथमें बीस रुपए के नोट देते हुए कहा—

"महाशय! ऐसी स्त्री की दवा के लिये मैं दाम और अपनी फ़ीस; दोनों ही न लूँगा। अहा! सचमुच तुम हिंदू लोग हमलोगों से हज़ारहा सुखी हो। मैं तो ईश्वर से यही माँगता हूँ, कि अगले जन्म में मैं हिंदुस्थान में ही जन्म लूं"।

उस आदमी ने रुपए लेने से इन्कार किया, लेकिन डाक्टर ने एक न माना। दाई की आँखों में आँसू झलझला आए, वह कुछ न बोल सकी। डाक्टर और वह आदमी उसी समय चले गए। इनके जाने के बाद ही रणछोड़ आया। दाई को देखकर वह बड़ा अचंभित हुआ। दया ने उससे यह हाल कह सुनाया।

रणछोड़ ने दाई से पूछा—"आप किसकी ओर से यहाँ भेजी गई हैं?"

दाई—"मुझे नाम तो मालूम नहीं। जो महाशय अभी डाक्टर साहब के साथ आए थे, वे मुझे पाँच रुपए रोज़ पर ठीक करके ले आए हैं। आज की फ़ीस मुझे मिल गई है। इसके बाद

जो कुछ देना है, वह उन्हीं को। आपसे कुछ भी लेने की मुझे मनाही है।"

उसका यह जवाब सुनकर रणछोड़ चिंता में डूब गया। मदनराय के मामूली नौकरों को वह पहिचानता था। दया की बताई हुई उस पुरुष की हुलिया से वह इतना ही जान सका, कि वह मनुष्य नहीं था। दंपति प्रसन्नता से ईश्वर को धन्यवाद देते हुए अपने पर उपकार करनेवाले मनुष्य की राह देखने लगे।

आधा घंटा बीता, एक घंटा बीता, किंतु कोई न आया। केवल महल्ले का एक लड़का दवा की शीशी लेकर आया। रणछोड़ के पूछने पर उसने कहा:—

"मुझे तो गली के मोड़ पर एक भला आदमी मिला, जिसने यह शीशी देकर कहा कि इसे रणछोड़ के घर पहुँचा देना; उसने मुझे मिठाई खाने के लिये चार पैसे भी दिए हैं।"

लड़के के जाने के बाद मदनराय का चपरासी आया। उससे रणछोड़ ने सब बातें कहीं! इसपर उसने जवाब दिया:—

"मुझे तो अभी-अभी बेटीजी ने बुलवाकर कहा है कि जाकर पूछ आओ कि रणछोड़ ने अभी तक किसी डाक्टर वगैरह-का प्रबंध किया है या नहीं। यदि कोई काम हो, तो वह भी पूछते आना। इसके बाद मैं सीधे तुम्हारे घर ही चला आ रहा हूँ। मैं अब जाता हूँ, तुम्हें कुछ कहना है?"

रणछोड़—"हाँ, बहिन से कहना कि तुम्हारी दया से अब बीमारी घट रही है। यदि आज वह न होती, तो मैं तो चौपट हो ही चुका था।"

चपरासी–"अरे भाई! यह तो बाबू के घर की लक्ष्मी है, लक्ष्मी। उसी से सारा घर उजाला है।" इतना कहकर वह चला गया।

दाई ने दवा पिलाई। अंदाज़ से मेवा और साबूदाना भी दिया, इसके बाद वह स्टूल पर बैठ गई। रणछोड़ अपने पड़ोसी के घर से उसके लिये एक कुर्सी उठा लाया। रणछोड़ ने रग्घू को कुछ खिलाया। कुछ बनाकर स्वयं भी खाया। इसके बाद एक पुस्तक पढ़ताहुआ दया के पास जाकर बैठ गया।

दया ने पूछा–" तुमने कुछ खाया ?"

रणछोड़–" हाँ खा लिया, अब तुम ज़रा आराम करो।"

दाई ने सलाह देते हुए कहा–हाँ बहिनजी, अब तुम सो जाओ; बहुत बोलने से कमज़ोरी बढ़ती है।"

दया ने दीनतापूर्वक कहा–"देखो बहिन! अगर तुम मुझे आराम दिया चाहती हो, तो मेरा आराम मेरे पति को समझो। इतने दिनों की बीमारी में एक दिन भी वे मेरे पास नहीं बैठ सके हैं। आज ईश्वर ने कृपा-दृष्टि की है। इसलिये तुम भी मुझे इनके साथ जी भरकर बातचीत कर लेने दो। इसी में मुझे आराम है।"

दाई ने ठंढी साँस लेकर कहा–"हाँ, हाँ, बहिन! ज़रूर बातें करो। जिसपर बीतती है, वही जानता है, कि दिल को कैसे आराम मिलता है। मैं दूसरी कोठरी में चली जाती हूँ।"

दया–" नहीं बहिन! हममें हमेशा पवित्र बातें ही होती हैं। जिन प्रेम की बातों को तीसरा नहीं सुन सकता, वे कदापि भी पवित्र नहीं हैं।"

फिर उसने रणछोड़ की ओर देखकर कहा—" ज़रा मेरे नजदीक तो आओ। "

रणछोड़ ने नज़दीक जाकर कहा—" कहो, क्या कहती हो ?"

दया—" इधर-उधर देखने से ठीक बातचीत नहीं होती, ज़रा मेरी ओर देखो। "

रणछोड़ ने वैसा ही किया।

दया—" अपना हाथ इधर दो "

दया ने रणछोड़ का हाथ पकड़कर अपनी छाती पर रख लिया। इसके बाद वह रणछोड़ की आँख से आँख मिलाकर देखने लगी। कुछ देर बाद रणछोड़ ने कहा—

" चुप क्यों हो, कुछ बोलो तो सही ! तुम क्या कहना चाहती हो ? "

दया—" यह कर क्या रही हूँ ? क्या बातों ही में मज़ा है ?"

दोनों के नेत्र, मुख और मन हँस रहे थे। आत्मा की एकता हो गई थी। दोनों की आँखों से आनंद के झरने बहने लगे और दोनों ही अपनी आँखों से दूसरे का रस पीने लगे।

पवित्र, निर्दोष प्रेम के चित्र का ऐसा ही दृश्य था। दाई भी मुस्कुराती हुई उन दोनों की ओर देखती रही। उसने मन-ही-मन में कहा:—

" इनकी बातों में कितना मज़ा है ! "

नवाँ परिच्छेद

गुलशनकी कहानी

रोते को सहानुभूति दिखाना ही उसकी दवा है—

मैंने दिल की भड़कती हुई आग से गर्माकर कहा- "क्या आप भी वैसे ही स्वार्थी हैं? क्या अपना काम हो जाने पर हमारी ओर देखना भी आपको लाज़िम नहीं ?"

ज्योतिप्रकाश ने कहा-" नहीं यह क्या बात है ? मैं तो आने की ख़्वाहिश कर रहा था, लेकिन आपके आदमी के न रहने के ख़याल से नहीं आ सका। दूसरे, आपसे मेरी मुलाक़ात भी न थी। तब कैसे आता ?"

मैंने पूछा-" क्या आपके उन दोस्त महाशय ने आपको कुछ समाचार नहीं कहे ?"

उन्होंने साफ़ दिल से जवाब दिया-" नहीं, मुझसे किसी ने कुछ भी नहीं कहा । आज मेरे आने पर बुढ़िया ने कहा और उसी वक्त मैं भी आपके यहाँ चला आया।"

मैं-" मैंने दो दिन तक तुम्हारे उन दोस्त से कहा है। फिर उस बूढ़ी से दो बार कहा है । फिर भी आप दिखाई नहीं दिए, फिर मैंने आज बुढ़िया को चकमा दिया। तब कहीं आपके दर्शन नसीब हुए।"

उन्होंने कहा-" कहिए, क्या हुक्म है ?"

मैंने धड़कते हुए दिल से पूछा–" आपको.........वहाँ आराम तो है न ? "

वे–" हाँ है......लेकिन । "

मैं–" क्या आपका दिल वहाँ नहीं लगता ? हाँ ! हाँ !! मैं समझ गई । अच्छा अब एक बात कहूँ ? "

वे–" कहिए ! कहिए !! "

मैं–" क्या आप मेरे यहाँ आना क़बूल करेंगे ? मैं आपकी ख़िदमत करने को तैयार हूँ । आपको ख़ुश रखने की मैं कोशिश करना चाहती हूँ । "

वे–" आप ! आपको तो—"

मैं–" हाँ, वे अब नहीं हैं । मैंने ही उन्हें आने को मना कर दिया है । "

वे–" लेकिन यदि दीनलता झगड़ा करेगी तो..."

मैं–" आपने उसे इस मास की तनख़ाह तो दे दी है न ? तब वह क्या करेगी ? "

वे मेरी तरफ़ देखकर बोल उठे—" आप कितनी तनख़ाह लेंगी ? "

मैं–" उससे दस रुपए ज़ियादा । "

वे–" मंजूर है । "

मैं–" जब आप ख़ुश होंगे, तब आप ही मेरा ख़याल करेंगे । "

वे–" यह तो ठीक है । जब मेरा दिल ही तुम्हारे पास रहेगा, तब रुपए कहाँ जावेंगे ? यह सब मुहब्बत पर मुनहसर है; लेकिन सच्ची मुहब्बत बहुत कम हुआ करती हैं । "

मैं–"बस, सब मामला तय हो गया। वे दूसरे दिन से यहाँ आने लगे। उनका मिजाज़ देखकर मैं बहुत खुश हुई। वे कभी पैसे के लिये मेरी ज़बान खुलने न देते। पहले ही महीने उन्होंने सौ रुपए तक दिए। लेकिन फिर भी मेरी अक़्ल ठिकाने न आई। मैंने सब रुपए उनके और अपने ऐशोआराम में ही खर्च कर दिए। उनका रोज़गार बड़े जोरों पर चल रहा था। लोगों में उनकी इज्जत भी अच्छी थी; इस बात का मुझे भी बहुत घमंड था। चाहे घर में खाने को न हो, लेकिन मिलने पर या किसी के अपने घर आ जाने पर मैं दस-पाँच रुपए सहज ही खर्च कर दिया करती थी। मेरा पहलेवाला आदमी भी कभी-कभी आता था। इनसे उसकी जान-पहचान थी। उसको देख इनको कुछ बुरा लगता था; लेकिन वे मुझे खुश रखने के लिये कुछ बोलते न थे। दिल-ही-दिल में जला करते थे। वह आदमी सिर्फ़ मुझसे मिलने आता था; न तो उसके ही दिल में कोई और बात थी और न मेरे ही। मैं उससे ज्योतिप्रकाश के सामने ही बातें करती थी। लेकिन फिर भी ज्योतिप्रकाश को सदमा होता था। एक दिन मैं और ज्योतिप्रकाश–दोनों ही बड़ी खुशी-खुशी हँस-बोल रहे थे; उसी समय वह भी आ पहुँचा। ज्योतिप्रकाश अपने मुँह पर चादर डालकर लेट रहे। उनके चेहरे पर झाँवरी छा गई। उसके जाने के बाद से फिर वे हँस-हँस कर बातें करने लगे। मैं समझ गई, कि उसके आने से ज्योतिप्रकाश को तकलीफ़ होती है। मैंने सोचा, कि उसे मना कर देना चाहिए। लेकिन अब तक इतने आदमियों से मैं धोखा खा चुकी थी, इसलिये उसका दिल न दुखाने में ही अपना भला समझकर मैं चुप रह गई। इधर

ज्योतिप्रकाश को भी मैं ख़ुश रखना चाहती थी। मेरी ख्वाहिश हुई, कि ज़रा ज्योतिप्रकाश का दिल तो टटोलूं।"

एक दिन मैंने उसे रात को अपने ही यहाँ सो रहने के लिये कहा। इससे ज्योतिप्रकाश को बहुत रंज गुज़रा। लेकिन उन्होंने मुझसे कुछ नहीं कहा मैं ज्योतिप्रकाश के ही कमरे में रही। दूसरे दिन उसके जाने पर मैंने ज्योतिप्रकाश से बातें शुरू की।

"क्या आप नाराज़ हैं? सच कहिए, उसके आने से आपको तकलीफ़ होती है क्या?"

वे—"यह तो पूछने की बात है? ऐसा कौन शख्स होगा, जो इसपर खुश होता होगा?"

मैं—"तब आपने मुझसे क्यों नहीं कहा? मैं उन्हें मना कर देती।"

वे—"नहीं, मुझे ख़ुश रखने में आपको तकलीफ़ हो, ऐसा मैं नहीं चाहता। जहाँ तक मुझसे सहते बनेगा, सहूँगा; नहीं तो आपसे छुट्टी माँग लूंगा। इतने थोड़े दिन की मुहब्बत से जब मेरे दिल को इतनी जलन होती है, तब मेरे मना करने से आपके और उनके दिल में क्या कम जलन पैदा होगी? फिर, जब मैं आपसे पाक मुहब्बत रखता हूँ, तब आपको ख़ुश रहने के लिये अगर मैं खुद तकलीफ़ सहूँ, तो इसमें ताज्जुब ही क्या? मुहब्बत के यह मानी हैं, कि उसके देखते ही अपना सारा दुःख भूल जाय।"

मैं—"उनकी बातें सुनकर चुप रह गई। मन-ही-मन मैं बहुत पछताई। मैंने उस आदमी से कह दिया, कि अब से मुझे

देखने के लिये हफ़्ते में दो ही दिन आया करे, वह भी जब ज्योतिप्रकाश घर में न रहें। जब आना तो आध घंटे में ही उठकर चले आना। बस, इतने ही से ज्योतिप्रकाश को धीरज हो गया। हम दोनों की खूब चैन से कटने लगी।

"कुछ दिन बाद ज्योतिप्रकाश को करीब बीस दिन के लिये अपने देश में जाना पड़ा। इस बीच में उनके हिस्सेदार ने जालसाज़ी से कारोबार को सत्यानाश कर डाला। इसमें ज्योतिप्रकाश को पचास हज़ार का घाटा आया। इसी से वे पागल हो गए।

विदेश से उनके आने पर मैंने उन्हें छाती से लगाना चाहा; उनकी सीरी ज़ुबान से अच्छी-अच्छी प्यार की बातें सुनने की मैं उम्मेद में थी। लेकिन हाय! मैंने कुछ और ही देखा और सुना। इतना कहकर गुलशन ने एक ठंढी साँस खींची; अरुण ने भी उसका साथ दिया।

"उनका रसीला चेहरा सूख गया था। उनकी आँखें लाल हो रही थीं। चेहरे का तेज़ उड़ गया था। वे आते ही पलँग पर लेट रहे। उस वक़्त तक मुझे उनके घाटे की बातें मालूम न थीं। मैं समझी कि कुछ मेरा ही क़सूर होगा। मैंने उन्हें मना कर बहुतेरे सवाल किए; तब वे मुझे गले लगाकर कहने लगे:—

"प्यारी! अपना सुख परमेश्वर को बुरा जान पड़ता है; वह हम दोनों को छुड़ाया चाहता है।"

यह बात सुनते ही उनकी छाती में छिपाए हुए अपने मुँह को उठाकर मैंने उनकी ओर देखा। देखा तो उनकी आँखों से आँसू की झड़ी बँध रही थी। चेहरा बार-बार मुरझा जाता था।

मैंने उनका मुँह चूमकर कहा—"अपने को कोई जुदा नहीं कर सकता।"

वह भी मेरे होठों को चूमते हुए बोले—"यह सत्य है, हमारे दिल को कोई भी जुदा नहीं कर सकता। मगर सूरत नजर न आएगी। मेरे कारोबार का दिवाला हो गया। मुझे पचास हज़ार का घाटा सहना पड़ा है। इस वक्त मेरे पास एक कौड़ी भी नहीं है। ऐसी अवस्था में हमारा-तुम्हारा साथ रहना भी मुश्किल है। जब फिर मेरे पास रुपए आवेंगे, तब मैं तुम्हारे पास आऊंगा। तुम अब अपना कोई बंदोबस्त करलो।

यह सुनकर मेरी छाती फट गई। मैं आंखें फाड़-फाड़ कर उनकी ओर देखने लगी। वे फिर कहने लगे:—

"यह बात सत्य है।"

मैं—"हो, मेरी बला से—मैं आपको न छोड़ूंगी।"

मैंने हर तरह से उनका दिल बहलाना चाहा, लेकिन उनके दिल को बहुत चोट लगी थी। सवेरे उठकर रोज़ की तरह जाने से पहले वे मुझे छाती से लगा, होठों को चूम खड़े ताकते रह गए। जाने के वक्त मेरा हाथ उनके हाथ में था। उनके पैर उठते न थे; जाने को तबीयत न चाहती थी और कलेजा मुँह को आता था। जैसे बहुत दूर की मुसाफ़िरी से पहले आशिक़ और माशूक़ जुदा होते हैं, ठीक वैसा ही यह दृश्य था। उन्होंने फिर मुझे चूम लिया और चले गए। जाते-जाते मेरी तरफ़ देखकर एक ठंढ़ी सांस खींचते गए।

हाय! वह ठंढ़ी साँस, वह सूखा हुआ चेहरा। वह

लाल-लाल आँखें उनकी वह सूरत अब भी मेरी आँखों के आगे नज़र आ रही है।

गुलशन ज़रा देर दम लेने को रुक गई। मीनाक्षी फिर दूध के दो कटोरे लाकर वहाँ रख गई। दोनों के दूध पी चुकने पर गुलशन ने अपनी कहानी आगे बढ़ाई।

"आपको आज बहुत देर हो गई, माफ़ कीजिएगा, लेकिन अब मेरी कहानी भी थोड़ी ही रह गई है।

उनके चले जाने पर मैं बहुत घबराई। या खुदा! यह क्या ग़ज़ब हो रहा है। ऐसे आदमी पर ऐसी मुसीबत! मैं रोई— खूब रोई! उस दिन मैंने खाना भी नहीं खाया। मैंने उनके देश जाने पर सौ रुपए का कर्ज़ भी कर लिया था। गद्दे, लंप, कुर्सी वग़ैरह मैं अपने प्यारे के लिये ले आई थी। मगर मैं वह सब उन्हें दिखा भी नहीं सकी। मेरी किस्मत ही पलट गई। रात होने लगी; मैं उनकी राह देखती हुई भीतर-बाहर करने लगी। अब आएँगे, अब आते होंगे, सोचती हुई राह की ओर देखने लगी। आठ बजे, नौ बजे, दस बज गए; लेकिन वे न आए। मैं समझी कि बाइस्कोप देखने गए होंगे। जब बारह बज गए और फिर भी वे न आए, तब मैं समझ गई, कि वे अब न आवेंगे। मैं लाचार होकर पलँग पर पड़ी-पड़ी रोने लगी। वह रात मैंने रोते-रोते ही बिता दी। मुझे उनके रोज़गार का दुःख न था; मुझे उनकी मुहब्बत सता रही थी। बार-बार 'प्यारी गुलशन, किधर गुलशन' की आवाज़ मुझे याद आ रही थी। उनका यह कहना, कि आहा! खुदा ने तेरा बदन किस मिट्टी से बनाया है। इतना सुंदर होने पर भी रेशम से अधिक मुलायम है। देखने में सब

के जैसा, लेकिन हाथ लगाने में मखमल है" उनकी यह सब बातें मेरे दिल को सताने लगीं। दूसरा दिन भी ऐसे ही बीत गया। इस तरह मैंने तीन दिन तक उनकी राह देखी। कई प्याले काफ़ी के सिवा मैंने इन तीन दिनों में और कुछ भी न खाया। भूख और दिली तकलीफ़ से मेरे सिर में चक्कर आने लगे। रोते-रोते आँखें जलने लगीं। चेहरे का रंग बदल गया। शाम को मैंने उनकी दूकान पर जाने का इरादा किया। मैं किराए की गाड़ी-में वहाँ तक गई। वहाँ मैंने ताला बंद पाया। पूछने पर बगल की दूकान वाले ने कहा—"वे दिन में दो-तीन घंटे के लिये आते हैं; उन्हें बहुत बड़ा घाटा आया है।"

मैं निराश होकर घर लौट आई। लेकिन मुझे चैन न पड़ी! मैं रोज़ किराए की गाड़ी कर, उनकी दूकान के फेरे लगाने लगी। एक दिन उनके गुमाश्ता दिखाई दिए। उससे मैंने कह दिया, कि ज़रा उन्हें मेरे घर भेज देना। उस दिन वे आए। उन्हें देखकर मैं बहुत रोई। वे मुझे धीरज देने लगे। इसी समय वह पहले वाला आदमी भी आ गया। इसलिये मैं उनसे कुछ अधिक बातें न कर सकी। सबेरे पाँच बजे वे जाने को तैयार हुए। मैंने उनसे कहा—"मैं बेवकूफ़ हूँ; कमअक़्ल हूँ; आपको तकलीफ़ दी, लेकिन कुछ कह न सकी। अज फिर आप आइएगा।"

उन्होंने कहा—"नहीं। अब यहाँ नहीं; मैं नदी के किनारे मिलूँगा। गुमाश्ता गाड़ी लेकर आएगा; तुम उसके साथ चली आना।"

वे चले गए। मुझे अब दो-दो तकलीफें थीं। एक तो मुहब्बती आदमी जा रहा है, दूसरे अपने खाने की फ़िक्र भी थी।

में शाम को नदी किनारे गई। वहाँ हमलोग ग्यारह बजे रात तक पत्थर पर बैठे रहे। आखिर मैंने कहा—"आप मेरे खाने को सूखी रोटी ही दीजिए। मैं अधिक कुछ नहीं चाहती। पर आप मुझे छोड़िए नहीं। उन्हें दया आगई। उन्होंने कहा-"मैं इसीलिये तुम्हें छोड़ रहा था, जिसमें तुम्हें तकलीफ़ न हो। जब तुम मेरे साथ मुसीबत झेलने को भी तैयार हो, तब मैं भी तुम्हें छोड़ नहीं सकता। आधी मिलेगी, तो उसमें भी आधी तुम्हें खिला कर खाऊंगा।" बस, मैं खुश हो गई।

दूसरे दिन से फिर मेरा ऐशोआराम शुरू हुआ। हम दोनों साथ ही रहने लगे। छः महीने बीत गए। मैं समझती थी, कि इस बीच में फिर कोई-न-कोई रोज़गार शुरू हो जायगा। लेकिन उन पर कर्ज़ बहुत था और पास में पैसा एक भी नहीं। वे अपने दोस्तों से रुपए, दो रुपए रोज़ लाते और मुझे देते थे। वे हमेशा होटल में खाते थे। मुझसे कह देते, कि मैं खाना खा चुका हूँ, मेरे लिये कुछ न मँगाना। पहले तो मैं सच समझती थी, फिर बाद को मालूम हुआ कि वे सिर्फ़ एक वक्त होटल में थोड़ा नाश्ता किया करते हैं। इसलिये मैं घर पर होटल से नाश्ता मँगाकर रखने लगी। इस तरह कैसे बीतता। मकान का किराया भी तीन महीने का चढ़ गया। मेरे सब ज़ेवर चले गए। रोज़गार कुछ था ही नहीं; इससे उनकी तबीयत भी बहुत गिर गई। लेकिन इसपर भी मैं बड़े आराम से रहती थी। क्योंकि वे मुझे हर वक्त खुश रखने की कोशिश किया करते थे। वे कभी दुःख में भी मुझे आधी बात न कहते थे।

फिर भी कहाँ तक निबहता? एक दिन न तो मुझे खाना ही

मिला और न उन्हें नाश्ता ही। उनके पास तो एक पैसा भी न था और मेरे पास सिर्फ़ चार आने थे। मैंने उनके आने पर नाश्ता मँगाया और उन्हें बैठाकर खिलाने लगी। तीन-चार निवाले खाने के बाद वे मुझसे भी खाने की ज़िद करने लगे! मैंने कहा, कि मैं फिर खा लूंगी, लेकिन उनपर ज़िद सवार हो गई। हम दोनों ही ने ज़िद पकड़ी। आखिरकार मैं नाराज़ हो गई। मैंने हाथ का निवाला फेंककर कहा–"यह क्या गज़ब करते हो? दिनभर खाना नहीं, और पेट जलाते हो, मेरे भी सिर में चक्कर आता है; फिर भी इतनी ज़िद करते हो?"

वे बेचारे चुप-चाप आकर पलँग पर लेट रहे। मैं भी आध घंटे तक चुपचाप बैठी रही। फिर भी मैंने ज़िद कर उन्हें कुछ खिलाया। उन्होंने भी फिर कोई ज़िद न की। मैंने भी कुछ खा लिया। दूसरे दिन बाहर जाने के समय वे कहने लगे–"गुलशन! नाराज़ न होना। मुझसे तुम्हारी यह तकलीफ़ देखी नहीं जाती। मैं तुम्हें तुम्हारी कसम से छुटकारा देता हूँ; तुम अपना काम करो। मेरे पास जो कुछ आएगा, मैं तुम्हें देता रहूँगा। जब मेरा रोज़गार चलेगा, तब फिर मैं तुम्हारे पास आऊंगा। बिना रुपए लिए अब मैं तुम्हें अपना मुँह न दिखाऊंगा।"

मैं चौंक पड़ी। मेरी समझ में न आया, कि इसका क्या जवाब दूं। मैं कुछ कहूँ, इसके पहले ही वे भी चल दिए।

बस, उसी दिन से फिर मैंने उनको कभी नहीं देखा। उसी के बाद से मैं पैसा चाहने लगी। फिर किसीसे सच्ची मुहब्बत करने की हिम्मत न पड़ी। कुछ ही दिन में मेरी हालत फिर सुधरने लगी। अब मैं इस हालत में हूँ। मैं उन्हें ढूँढने के लिये कई बड़े-

बड़े शहरों में गई; यहाँपर आए भी छः महीने बीत गए; लेकिन अबतक उनका कुछ भी पता नहीं लगा। मुझे पक्की खबर लगी है, कि वे इस शहर में आए हैं। मैं यहाँ रहकर उन्हें ढूँढ़ना चाहती हूँ।

हाय ! क्या खुदा किसी दिन भी उनकी सूरत न दिखाएगा।

इतना कहकर गुलशन ने एक ठंडी साँस ली।

अरुण ने पूछा—"उन्हें तुमको छोड़कर गए कितने दिन बीते होंगे ?"

गुलशन—"सिर्फ़ दो साल, क्या आपसे मुझे इस काम में कोई मदद मिल सकती है ?"

अरुण—"ज़रूर मैं तुम्हारी मदद करूँगा। लेकिन मैं उन्हें कैसे पहचानूँगा ?"

गुलशन—"उनका चेहरा आप ही जैसा है। क़द भी ऐसा ही है। फिर उनका देशाभिमान उनकी पहचान जल्द करा देगा।"

अरुण—"क्या वह बड़े देशाभिमानी हैं ?"

गुलशन—"हाँ, उन्होंने मुझे भी सूत कातना सिखाया था। उनकी याद के लिये मैं रोज़ आध घंटे तक सूत कातती हूँ। मैंने बहुत-सा सूत तैयार किया है। मैं वह सब सूत जमा किए हुए हूँ। जब वे मिलेंगे, तो मैं उसी सूत की माला उन्हें पहनाऊँगी।"

दसवाँ परिच्छेद

आदमी या जादूगर

शांत कर्त्तव्य-परायणता का प्रभाव मंत्र से भी अधिक होता है।

सेठ माधवलाल की धर्मशाला का मकान बहुत बड़ा था। इसमें ऊपर तथा नीचे छोटी-छोटी कोठरियाँ बनी हुई थीं। बीच में बहुत बड़ा आँगन था। पानी के लिये कल और कुआँ, दोनों ही का प्रबंध था। धर्मशाला उस मकान को कहते हैं, जिसमें बिना किराया दिए, मुसाफिर ठहर सकते हैं, किंतु यहाँ का क़ायदा कुछ और ही था। हर एक कोठरी का पाँच-पाँच आने रोज़ के हिसाब से किराया लिया जाता था। इसके उपरांत चारपाई-गद्दे आदि की ज़रूरत हो, तो वह सब भी किराए पर मिल जाते थे। यह धर्मशाला किसी ग़रीब मुसाफ़िर के लिये न थी। अगर इस धर्मशाला को 'लॉज' या मुसाफ़िरख़ाना कहें, तो अनुचित न होगा। हम इसे सेठ माधवलाल का मुसाफ़िरख़ाना लिखेंगे।

आज शनिवार का दिन है। सेठ माधवलाल के मुसाफ़िर-ख़ाने में पंद्रह-बीस नवयुवकों की मंडली इकट्ठी हुई है। विनोद, जगन्नाथ, रणछोड़ तथा अरुण-ये चार नवयुवक अपनी जान-पहचान के हैं। आपस मे इस प्रकार की बातचीत चल रही है।

अरुण-"क्या आप लोगों को मालूम है, कि आज आप-लोग यहाँ क्यों बुलाए गए हैं?"

एक नवयुवक-"नहीं, हमलोग तो तुम्हारे निमंत्रण का सम्मान करते हुए यहाँ आए हैं।"

अरुण—"भाइयो ! दो महीने बाद अपने शहर में म्युनि-सिपैलिटी के सभासदों का चुनाव होनेवाला है । इसके लिये उम्मेदवारों को नामज़द करना है । मैंने आपलोगों को इस बारे में विचार करने के लिये बुलाया है । म्युनिसिपैलिटी शहर की ख़ास संस्था है और वह शहरवालों के फ़ायदे ही के लिये है । इसलिये जिसपर शहरवालों का पूरा विश्वास हो, अथवा जो शहर-वालों के आराम का ख़याल रखकर काम कर सकें, ऐसे ही गृहस्थों को चुनना चाहिए। आज-काल जिसप्रकार चुनाव हो रहा है, वह तो आप लोग जानते ही हैं। एक ने पूछा—"कैसा होता है ?"

अरुण—"वह चुनाव की रीति एक सुधरे हुए देश के लिये दिल्लगी जान पड़ती है । किंतु हमारा देश आधुनिक सुधरे हुए देशों की चाल सीखता है। जो महाशय सभासद बनकर अपनी नामज़दगी के साथ-साथ अन्यान्य सभाओं में भी शामिल होने का इच्छा रखते हैं, उन लोगों से प्रजा की भलाई का विचार ही नहीं हो सकता । क्योंकि वे लोग अपने कर्त्तव्य की ओर ध्यान नहीं देते । उन लोगों का मुख्य काम तो यही होता है, कि कैसे अधिक वोट मिले। ये लोग वोट लेने के लिये दलालों और दोस्तों की मदद लेते हैं । हज़ारों रुपयों का खून किया जाता है। वोट मिल जाने के बाद ऐसे लोग सिवा सभा में बैठकर कुर्सी तोड़ने के और किसी मसरफ़ में नहीं आते । वोट लेने के समय वोटरों के हित के लिये बड़ी-बड़ी बातें बघारते हैं; लेकिन वोट मिलने के बाद अपनी बातें और वोटरों के हित को बिलकुल ही भूल जाते हैं । बाद को वोटर उनसे मिलने जाते हैं, तो वे उनकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते ।

"इस प्रकार वोट लेने के लिये दलाल लोग ऐसी चतुराई की चालें चलते हैं, जिसे याद करते स्वयं शर्म आती है । एक बार बंबई में वाइसराय की कौंसिल के लिये दो उम्मेदवार नामज़द हुए । दोनों एक ही जाति के थे । इनमें एक बहुत धनी था । दूसरा मामूली आदमी होने पर भी होशियार था । दोनों तरफ़ से वोट के लिये खूब ज़ोर लगाया जा रहा था । मामूली दर्जे का आदमी रुपए खर्च करने में असमर्थ था, लेकिन उसकी कार्य-दक्षता को सब लोग मानते थे । धनी को अधिक वोट मिलने की आशा न थी, इसलिये वह अपने रुपयों को काम में लाने लगा । चारों ओर दलाल दौड़ाए जाने लगे । अख़बारों के कितने ही लालची लेखकों को हाथ में कर, अपनी तारीफ़ से भरे लेख लिखवाकर छपाए जाने लगे । दलालों ने वोटरों में धूम मचा दी । कुछ वोटर धनवान आदमी को वोट देने से इन्कार कर बैठे । उनपर अन्यान्य भले आदमियों द्वारा दबाव डाला गया । इन दलालों ने हद कर दी ! एक आदमी की एक रखैल वेश्या थी; वह आदमी उस धनी को वोट न देना चाहता था । इसपर वह दलाल वेश्या के घर जाकर साड़ी, सलूका, मिठाई, पान वग़ैरह करीब एक हज़ार रुपए का सामान भेंट कर आया । इसके बदले में उसने उसके यार से वोट दिलवाने को कहा । जो वोट लेने के लिये इसप्रकार के कर्म करता है, वह प्रतिनिधि प्रजा की क्या भलाई कर सकता है ? प्रजा को अपने काम का प्रतिनिधि चुनना चाहिए । प्रतिनिधि को अपने वोट के लिये दौड़-धूप करने की कोई ज़रूरत नहीं है । अगर उसे अपने नाम पर बिना माँगे वोट न मिलें, तो उसे समझ लेना चाहिए कि प्रजा उसकी सेवाओं से प्रसन्न नहीं है । अगर वह किसी

तरह प्रतिनिधि बन भी जाय, तो उससे क्या लाभ ? प्रजा को भी यह बात अच्छी तरह समझा देना चाहिए कि उसे कैसे प्रतिनिधियों की ज़रूरत है, इस बारे में प्रजा की आँखें खोल देनी चाहिए। आगामी चुनाव के लिये मेरा यह विचार है कि प्रजा को अच्छी तरह जता दूँ और इसके लिये हम लोगों को अभी से हलचल मचाते रहना चाहिए।"

जगन्नाथ—"आप बहुत ठीक कह रहे हैं। सभाओं में बैठनेवाले अमीरज़ादे गर्ज़ पड़ने पर झुक-झुककर सलाम करते हैं। फिर वोट मिल जाने पर वोटरों के हित का ध्यान भी नहीं रखते, मुझे तो इस हलचल के आपके विचार बहुत ही उचित जान पड़ते हैं।"

दूसरा नवयुक—"यह हलचल किस तरह शुरू की जावेगी?"

ऐसे ही समय मदनराय की पुत्री ऊषा भी वहाँ आ पहुँची। किसी ख़ास काम से वह स्टेशन की ओर आई थी, वहाँ से लौटकर वह धर्मशाले में चली आई। उसे देख, रणछोड़ दौड़ता हुआ उसके पास गया और कहने लगा:—

"आइए बहिन ! मेरे योग्य कोई सेवा है ?"

ऊषा—"नहीं-नही, मैं तो योंही चली आई हूँ। आज यहाँ कोई सभा है क्या ?"

रणछोड़—"नहीं, यह सभा तो नहीं है; पर आगामी म्यूनिसिपल चुनाव के लिये ये महाशय कुछ सलाह कर रहे हैं। इनके विचार सराहनीय हैं।"

ऊषा ने अरुण की ओर देखा। अरुण ने बुद्धिमानी के साथ उसके पास जाकर कहा—" देवी ! यहाँ हमलोग यह विचार

कर रहे हैं, कि चुनाव किसप्रकार होता है और कैसे होना चाहिए।"

अरुण ने यह कहते हुए, सारी बातें सुना दीं। ऊषा ने प्रकट किया—यदि सभा की कोई हानि न हो, तो वह भी सभा में बैठे। बड़ी ख़ुशी से सबलोगों ने उसके लिये स्थान दिया। बाद फिर अरुण ने लोगों की ओर देखकर कहना आरंभ किया:—

"इसके लिये हमलोगों को अभी से आंदोलन मचाना चाहिए। पहले एक-एक गली या मुहल्ले को हाथ में लेना चाहिए। उस महल्ले के तमाम वोटरों को समझाकर, उन वोटरों में-से एक-एक आदमी को मुखिया चुन लेना चाहिए। यह मुखिया जिसे वोट देने को कहे, सब लोगों को उसी को वोट देना चाहिए। बड़े-बड़े मुहल्लों में पाँच-सात मुखिया मुक़र्रर किए जाने चाहिए। लेकिन वह सब मिलकर एक ही को चुनें। इसप्रकार हर एक महल्ले के चुने हुए, प्रतिनिधियों की नामावली को जाँच कर डालना चाहिए। जँचे हुए प्रतिनिधियों में अपने काम के योग्य किसी भले आदमी को जाँच का प्रतिनिधि बना देना चाहिए। वह प्रतिनिधि किसी ऐसे आदमी को प्रतिनिधि बनावे, जिसे उस ज़िले के तमाम आदमी सहज ही में वोट दे सकें और जिस के हृदय में प्रजा के हित की लालसा हो या प्रजा जिसपर विश्वास करती हो। एक बार चुनाव हो जाने पर, यदि कोई काम में निकम्मा साबित हो, तो दूसरे आदमी को चुनना चाहिए। इसीप्रकार उससे भी अच्छे किसी दूसरे आदमी को चुनना चाहिए। इस तरह यदि चुनाव हो, तो सच्चा प्रतिनिधित्व दिखाई पड़ सकता है। आज-काल तो एक दूसरे के दबाव में, वैसे ही

रुपए के दबाव या मदद से न जाने कैसे लोग घुसे जा रहे हैं। इससे प्रजा का कुछ भी सुधार नहीं हो सकता।"

जगन्नाथ ने चिल्लाकर कहा—"बहुत ठीक है! इस प्रकार किसी भी वोटर पर दबाव नहीं डाला जा सकता।"

ऊषा—"इसमें उम्मेदवारों को भी किसी प्रकार की कोशिश करने की आवश्यकता दिखाई नहीं पड़ती।"

अरुण—"उम्मेदवार अपनी नामजदगी करा सकते हैं; क्योंकि वे जिस ज़िले के उम्मेदवार होना चाहेंगे, उस ज़िले के वोटरों के प्रतिनिधि इसका ध्यान रक्खेंगे।"

ऊषा—"क्या इसमें स्त्रियाँ भी मदद कर सकती हैं?"

अरुण—"हाँ! स्त्रियाँ यदि इस काम में भाग लें, तो बड़ा भारी काम हो सकता है।"

ऊषा—"वह कैसे?"

अरुण—"पहले तो स्त्रियाँ इस विषय का समाचार अपने कुटुंब के पुरुषों को दे सकती हैं। इसके बाद अपने महल्ले की स्त्रियों में उन्हें इस विषय का उपदेश देना चाहिए। प्रतिनिधि होने लायक़ महाशय का नाम अपने कुटुंब के बड़े से अच्छी तरह समझाकर बता देना चाहिए। इस प्रकार काम आरंभ करने पर अन्यान्य सभाओं के काम में भी उनके विचार सादर ग्रहण किए जा सकते हैं। हमारे यहाँ कहा गया है—'स्त्रियाँ बाहरी कामों में हाथ न बटावें; क्योंकि समय-समय पर इन्हें पुरुषों से संसर्ग रखना पड़ता है। इससे उनकी मर्यादा भंग होती है।' इस नियम को माननेवाली स्त्रियाँ सब बातों पर विचारकर अपने कुटुंब के पुरुषों से चर्चा छेड़कर सच्चे तत्व को खोज सकती हैं और

इसप्रकार अपना मत अपने कुटुंब के सबसे बड़े पुरुष द्वारा संसार में प्रचारित कर सकती हैं। इससे उस कुटुंब के लोग भी उसी मत के बन सकते हैं।"

ऊषा—"तो क्या आप समझते हैं, कि इससे लोगों की सिफ़ारिश घट जायगी?"

अरुण—"शायद पहली बार कोई सिफ़ारिश से दबाव में आ जाय, पर दूसरी बार तो वह उससे छुटकारा पा जायगा! अगर आदमी आँख रहते कुएँ में गिरे, तो इसमें दूसरे का क्या दोष? अपने को तो अपना कर्त्तव्य समझकर काम करना चाहिए।"

विनोद—"लेकिन हम गिनती के इतने आदमी कर ही क्या सकते हैं?"

अरुण—"विनोद! तुम हमेशा निराश ही रहते हो; इतना क्यों डरते हो? क्या तुम्हारे और मित्र लोग नहीं हैं? उन मित्रों के क्या और मित्र न होंगे? एक से लोग अनेक संख्या में हो सकते हैं और काम कर सकते हैं।"

सब लोगोंने एक मत होकर अपने-अपने ज़िले में कार्य करना स्वीकार किया। ऊषा ने भी इस काम में हाथ बटाने की इच्छा प्रकट की; उसका भी नाम इस मंडल में लिख लिया गया। कुल पंद्रह आदमियों के नाम लिखे गए। एक के बाद एक, सब चले गए। अंत में केवल अरुण, विनोद, रणछोड़, जगन्नाथ और ऊषा रह गई।

रणछोड़ ने ऊषा से पूछा—"आप इस काम को कैसे हाथ में ले सकती हैं?"

ऊषा ने जवाब दिया—" क्यों ? "

रणछोड़ ने सशंकित होकर कहा—" उम्मेदवारों में सेठ माधवलाल नामज़द होंगे। उनके वोट के लिये आपके पिता को मेहनत करनी पड़ेगी। ऐसे समय तुम अपने पिता के विरुद्ध कैसे काम कर सकोगी ? "

ऊषा—" तुम कैसे काम करोगे ? "

रणछोड़ ने साफ़ हृदय से कहा—" मुझे क्या, मैं तो नौकर ठहरा। बहुत करेंगे, मुझे नौकरी से छुड़ा देंगे। मैं तो नौकरी छोड़ने को तैयार ही हूँ। मेरी क़िस्मत, मेरे लायक़ कोई जगह मुझे दिला ही देगी। "

ऊषा—" तब मेरे लिये कौनसी मुशकिल बात है ? मैं कुछ माधव की नौकरी नहीं करती; मेरे पिता उनके नौकर हैं। मैं स्वाधीन हूँ; मुझे किसी का क्या डर ? "

अरुण—" सच है, व्यक्तिगत स्वाधीनता ऐसी ही चीज़ है, ऊषा देवी ! क्या सचमुच ही आप समाज-सेवा में भाग लेना चाहती हैं ? "

ऊषा—" आपने मेरा नाम कैसे जाना ?"

अरुण—" मैं तुम्हें बहुत दिनों से जानता हूँ "

ऊषा—" लेकिन मैंने तो आपको आज पहले-ही-पहल देखा है। "

अरुण—" यह मेरा सौभाग्य है। "

विनोद बीच ही में बोल उठा—" बहिन ! अरुण भैया का ऐसा ही स्वभाव है, इनका जीवन ही कुछ ऐसा है, कि ये कौन हैं और क्या हैं; यह कोई समझ ही नहीं सकता। आज करीब एक

साल व्यतीत हुआ, हमारा और इनका साथ है; फिर भी मैं इनके रहने का पता भी नहीं जानता। ये बहुत ही बुद्धिमान, दीर्घदर्शी, कार्यदक्ष, सद्‌गुणी और देशभक्त हैं। इन्हें सवासौ रुपए मासिक तनख़्वाह मिलती है; किंतु इनका पहनावा देखिए, बिलकुल ही सादा है। न तो चाय पीने की आदत है, न दूध ही की, न बीड़ी ही पीते और न पान ही खाते हैं। कोई आदर से दे, तो ग्रहण भी कर लेते हैं। किंतु मैंने इनके मुँह से कभी नहीं सुना है, कि अमुक चीज़ बिना काम ही नहीं चल सकता।"

ऊषा—"ठीक है। कर्त्तव्य-परायण पुरुषों का जीवन ऐसा ही अगाध होता है।"

इसके बाद ऊषा ने अरुण की ओर देखकर कहा—"आपकी मुलाक़ात से मुझे बड़ा आनंद हुआ। कभी फ़ुरसत के समय मेरे घर ज़रूर पधारिएगा। जब आप मुझे बहुत दिन से जानते हैं, तो मैं समझती हूँ, कि मेरा घर भी ज़रूर जानते होंगे।"

अरुण—"हाँ, ज़रूर जानता हूँ। किसी समय अवश्य आऊँगा।"

विनोद—"जब इन्हें फ़ुरसत मिलेगी, तब न? जब देखिए, तब इन्हें काम-ही-काम रहता है। मैं तो इन्हें कभी किसी के यहाँ नहीं देखता।"

अरुण—"जाता क्यों नहीं? जरूर जाता हूँ; लेकिन मेरी सुहबत लोगों को पसंद ही नहीं आती।"

ऊषा ने सशंकित स्वर से पूछा—"क्या यह वास्तव में सच है?"

अरुण—"हाँ, क्योंकि मैं किसी से व्यर्थ ही मिलना पसंद

नहीं करता। किसी काम के बहाने ही मेरी मुलाक़ात होती है। वह भी या तो किसी ग़रीब की मदद का काम हो, अथवा समाज-सेवा के काम में आगे क़दम बढ़ाना हो। मामूली मुलाक़ात हो, तो लोग समझें भी, कि ठीक है।"

ऊषा—"आपकी इस तरह की मुलाक़ात से तो मुझे और भी आनंद आएगा।"

रणछोड़—"भैया अरुण! ये देवी मेरी बहिन हैं! इन्होंने ऐसी हालत में मेरी मदद—"

रणछोड़ की बात काटकर ऊषा बोल उठी—"बस रणछोड़! यह सब बातें यों नहीं कही जातीं।"

अरुण—"मैं जानता हूँ, रणछोड़! यदि इन देवी की मदद न मिलती, तो तुम अपनी पत्नी की बीमारी में इस तरह कामयाब न होते।"

रणछोड़ ने अचंभित होकर पूछा—"तो क्या यह ख़बर भी आपको मिल चुकी है? मदनराय के एकांत कमरे का हाल तुमने कैसे जाना?"

उषा भी बड़े आश्चर्य में पड़ गई। उसके हृदय में अरुण की ओर ऐसे सद्भाव और भलमनसाहत की छाप पड़ी, कि उसके मुँह से एकाएक निकल पड़ा:—

"तुम आदमी हो, या जादूगर?"

ग्यारहवाँ परिच्छेद

सुखकी घड़ी

मनचाही वस्तु के मिलने से कैसा आनंद मिलता है ?— समाज की उन्नति का अभ्यास देश की उन्नति का चिह्न है।

रात के साढ़े नौ बजे थे। अहमदाबाद जैसे शहर के सारंगपुर महल्ले में रात का साढ़े नौ बजे का समय और बंबई के कालबादेवी महल्ले की एक बजे रात का समय समान होता है। सड़क पर बहुत कम आदमी चल-फिर रहे थे। दूकानों में सिर्फ़ चाय और पानवालों की दूकानें खुली हुई थीं। हलवाइयों की दूकान के सामने चारपाई बिछाकर स्त्री और पुरुष परस्पर बातें कर रहे थे। रुपहली चाँदनी लोगों के हृदय में शाँति दे रही थी। ऐसे समय सारंगपुर के दरवाज़े के समीप चाय की एक दूकान में पाँच—छः आदमी बैठे हुए थे। घुटने तक का मैला, बदबूदार पतलून पहने, खुले बदन और बिखरे बालोंवाला दूकान का मालिक टूटे हुए प्याले में चाय उँडेल—उँडेलकर उन लोगों के प्याले में डाल रहा था। होटलवाला बड़े ही शौक़ीन मिजाज़ का आदमी जान पड़ता था। क्योंकि उसने उस टूटे हुए प्याले के ऊपर पीतल की पट्टी जड़वा ली थी। चाय और काफ़ी के छींटों से रंग-बिरंगी बनी हुई एक पुरानी मेज़ पर गरम पानी से भरा हुआ ताँबे का टोटीदार एक पीपा रक्खा हुआ था। साथ ही मैली और बदबूदार और टीन की एक चायदानी भी पड़ी हुई थी। बैठने के लिये दीवार

में जड़े हुए एक-एक फुट चौड़े तख्ते दोनों तरफ़ लगे हुए थे। पानी की कल के नीचे लकड़ी का एक पीपा पानी से भरा पड़ा था। पीपे के गंगा-जल जैसे पवित्र पानी में जूठे प्याले डालकर ज़रा हिला दिए जाते थे। तख्ते पर बैठे हुए दो-तीन आदमी चिलम से धुआँ निकाल रहे थे। दो आदमी इन सबसे ज़रा दूर बैठे हुए, आपस में बातें कर रहे थे। होटलवाला चाय के प्याले तैयार करके उन लोगों के सामने रख रहा था।

बात करनेवाले दो आदमियों में से एक दुबले पतले मनुष्य ने अपने साथ के मज़बूत और हट्टे-कट्टे एक मनुष्य से पूछा:—

"हाँ, तो फिर क्या हुआ?"

उसने जवाब दिया—"वे सब तुम्हारे कहे मुताबिक काम करने को तैयार हैं।"

इस दुबले-पतले मनुष्य का नाम अरुण और दूसरे मनुष्य का हरखम है। यह अढ़तियों जैसा काम करता है। अहमदाबाद में माल ले आने और ले जानेवाले मज़दूर सग्गड़ गाड़ी से काम लेते हैं। इन मज़दूरों की कमाई की सबसे पहली चीज़ इसी के पास थी। सग्गड़ किराए ले जाने के कारण मिल और रेलवे के अधिकाँश मज़दूर इसी के कहने में थे। इन्हीं मज़दूरों में सुधार कराने की इच्छा अरुण के हृदय में नाँच रही थी।

"अच्छा, कल मैं तुमसे यहीं मिलूंगा; ज़रूर आना।" इतना कह अरुण ने हरखम से विदा माँगी। इसके बाद उसने दूसरे एक मनुष्य के पास पहुँचकर कहा—"प्रताप! तुम्हारा काम कैसा चल रहा है?"

प्रताप ने जवाब दिया—"भैया! मैंने अपनी दूसरी मिल

के मजदूरों को भी एक मत में कर लिया है। अब मैं शीघ्र काम के लिये तैयार हो जाऊँगा।"

अरुण—"जब काम पूरा हो जाय, तब मुझसे कहना।"

इतना कह अरुण उस होटल से निकलकर गुलशन के घर की तरफ़ चला। उसके मकान में अब तक चिराग़ जल रहा था। अरुण ने मीनाक्षी से अपने आने की ख़बर करा दी। गुलशन खुद उसका स्वागत करने को आई।

गुलशन—"आइए हुजूर! आज इस लौंडी पर आपने बड़ा एहसान किया है।"

अरुण—"गुलशन! और कोई ज़रूरत नहीं है; मैं सिर्फ़ एक काम में तुम्हारी मदद लेना चाहता हूँ।"

गुलशन ने हँसते-हँसते कहा—"फ़र्माइये, फ़र्माइए।"

अरुण—"गुलशन! बात यह है, कि कुछ ही दिनों में म्युनिसिपैलिटी के मेंबरों का चुनाव होनेवाला है। नगर के रईसों में-से ही सभासद चुने जाएँगे। इसमें कितने ही नाचने-गानेवाली औरतों को भी वोट देने का अधिकार है और उनके यहाँ आने-जानेवाले सेठ-साहूकारों को भी। मैं यह चाहता हूँ, कि अधिक रुपए के लोभ से वोट के ख़रीददारों को वोट न दिया जाय। जो वोट देने लायक़ हों, उन्हीं को वोट दिया जाय।"

अरुण ने चुनाव के बारे में जो नियम बनाए थे, उन्हें गुलशन को अच्छी तरह समझा दिया।"

अरुण ने फिर कहा—"इसलिये तुम्हें यहाँ की वोट देनेवाली वेश्याओं के पास जाकर मेरी बातें समझाना पड़ेगा।"

अपने साथ बहुत दिन से परिचित की तरह अरुण को बोलते

देखकर, गुलशन के मन में तर्क-वितर्क होने लगा। वह सोचने लगी –"अहा ! इस आदमी पर मुझे पहले से शंका हुई थी । अब भी वही शंका होती है । क्या यह वही मेरा प्रेमी तो नहीं है ? यह अपने को खूब छिपा रहा है । लेकिन सच्चे दिल से बोलनेवाले भी इसी प्रकार बोलते हैं, मानो बहुत दिन की जान-पहचान हो । सब रहन-सहन उन्हीं का-सा है । सिर्फ़ बालों की रंगत कुछ बदली हुई है । वे अँगरेज़ी ठाट से रहते थे; इनका पहनावा साधारण और खादी के कपड़ों का है । ज्योतिप्रकाश को मूंछ और फ्रेंच दाढ़ी थी; यह नित्य मोंछ-दाढ़ी मुड़वाए रहता है । चेहरा मिलता-जुलता है, लेकिन नाम जुदा है । ज्योतिप्रकाश अपने को हिंदुस्तानी बताता था और यह गुजराती जान पड़ता है । फिर भी मेरा हृदय यह कह रहा है, कि मैं धोखा खा रही हूँ । यह ज्योतिप्रकाश ही जान पड़ता है । ज़रा जाँच तो करूँ ।"

इसप्रकार विचारकर उसने अरुण से कहा–"आप मुझे क्या हुक्म दे रहे हैं ? मेरे प्यारे के सिवा मुझपर अन्य कोई भी हुक्म नहीं चला सकता । सच कहिएगा, मुझे आपपर शंका हो रही है । मेरा दिल उछल रहा है । मैं हमेशा चौंक पड़ती हूँ, कि आप ही मेरे ज्योतिप्रकाश हैं । सच कहिए, क्या आप ज्योतिप्रकाश ही हैं ? अब मैं अपने को संभाल नहीं सकती; या तो आप सच कहें या मेरे यहाँ का आना ही छोड़ दें । हाय; अगर मेरे प्यारे होते, तो मेरा यों तड़पना न देख सकते । मुझे तकलीफ़ होती, तो वे मुझपर जान कुर्बान करने को तैयार रहते थे । क्या मेरे प्यारे मुझे इस तरह अकेली टूटे दिल से रोते देख सकते ? किसी की भी परवाह न कर, वे मुझे देखतेही छाती से लगाकर मारे

बोसों के हैरान कर देते। हाय ! वह दिन–"

इतना कहकर गुलशान ने ठंढी साँस ली।

अरुण ने धीरज देते हुए कहा–" गुलशन ! इतना क्यों घबड़ाती हो, खुदा हाफ़िज़ हैं।"

" बस-बस, मैं समझ गई। " गुलशान ने अरुण का हाथ पकड़कर कहा–"जनाब ! साफ़ कहिए, आप कौन हैं ? आप मेरे प्यारे हैं या उनके दोस्त ? आपकी सब बातें उन्हीं के समान होती हैं। सच कहिए, क्या आप ज्योतिप्रकाश हैं ? आपने अपना नाम बदल दिया है। मैं पहचान गई हूँ, लेकिन प्रेम के झोंके में कहीं मैं ग़ैर मर्द को प्यार न कर बैठूं; यही समझकर मैं चुप हूँ।"

अरुण ने पूछा–"दिल कब शाद होता है ?"

गुलशन–"जब दिल को आराम मिलता है।" साथ ही उसने भीप्रश्न किया–"इश्क़ की जंज़ीर भी कभी टूटी हुई देखी है ?"

अरुण ने जवाब दिया–"बावफ़ा के हाथ से वह टूट ही नहीं सकती।"

गुलशन ने उसके दोनों हाथ पकड़कर कहा–"प्यारे ! जब दिल मिल रहा है, तब ज़िगर क्यों नहीं मिलता ?"

अरुण–"इश्क़ से जकड़ा तो है, मिलता नहीं तो क्या हुआ?"

अरुण का यह जवाब सुनकर गुलशन अरुण के गले से लिपट गई। क्षण भर के लिये दोनों ही चुपचाप रहे। गुलशन का हृदय बड़ी तेज़ी के साथ उछलने लगा। अरुण ने उसकी देह से अपने को अलग करने का विचार किया। लेकिन अलग न हो सका। गुलशन की आँखों से आनंदाश्रु बहने लगे। कई बार अरुण की छाती से अपना मुँह हटाकर उनको देख-देखकर आनंद लेने

लगी। अरुण ऐसी निरसता के साथ उसकी ओर देख रहा था, मानो उससे कुछ मतलब ही नहीं। उसको उस दृष्टि में गुलशन की बड़ी पुरानी बातें भरी हुई जान पड़ीं। उसकी आँखों में कितने ही रहस्य नज़र आ रहे थे। अरुण के हृदय को पानी-पानी करती हुई, उसकी आँखों से आँख मिलाकर उसने कहाः—

"बेदर्द! बेदर्द!! अब देखिए, आपको कैसी सज़ा मिलती है।" यह कहती हुई वह समीप ही पड़ी हुई कुर्सी पर बैठ गई। अरुण अब तक खड़ा था। उसने गुलशन की ओर से अपनी निगाह फेर ली और 'अपने को प्रकट करके मैंने ठीक किया या नहीं' ऐसा विचार करता हुआ, वह वहाँ से हट जाने का इरादा करने लगा। उसका जाने का इरादा देखकर गुलशन ने तुरंत ही उसका हाथ पकड़ते हुए कहा—"अब कहाँ जा सकते हो? मैं आपको न छोड़ूँगी।" इतना कहकर उसने अरुण को ढकेलकर पलँग पर बिठा दिया और आप नीचे बैठगई औरउसके पैरों को गोद में रखकर फिर कहने लगीः—

"इसप्रकार प्यारे! इतने दिनोंबाद आज आपके दर्शन हुए। अब भी आप मुझे छोड़कर चले जायँगे? क्या आपके दिल में मेरी मुहब्बत अब नहीं रह गई है? आपके दिल में ज़रा भी रहम नहीं है? क्या इतने दिनों बाद भी मैं आपकी ख़िदमत न कर सकूंगी?" इतना कह आँसुओं से भरी हुई आँखों से वह अरुण की ओर देखने लगी।

अरुण—"गुलशन! मेरे दिल में तुम्हारी मुहब्बत है; प्यार है! लेकिन अब उसे पलटने की ज़रूरत है। पहले का प्यार स्वार्थ से भरा था, अब उसमें निस्स्वार्थ है। अतः अब वह

मुहब्बत कम हो गई है। हम दोनों का दिल अब साफ़ है।"

गुलशन–"मैं यह सब कुछ भी नहीं समझती। मैं इतना ही चाहती हूँ, कि अब आप मेरे ही पास रहें।"

अरुण,–"अच्छी बात है, लेकिन एक शर्त पर।"

गुलशन–"वह क्या ?"

अरुण–"तुम यह जानने की कोशिश कभी न करना, कि मै कहाँ जाता हूँ और क्या किया करता हूँ। मैं दिन में एक बार ज़रूर तुमसे मिलूँगा और ऐसी कोशिश करूंगा, जिसमें तुम्हारे जीवन का आदर्श उच्च हो। मैं जो कहूँगा, तुम्हें वही करना पड़ेगा।"

गुलशन–"मंजूर ! सब मंजूर है !! मेरे लिये आप जो कुछ कहेंगे, वह सब मुझे मंजूर है। आप रोज़ मुझे दर्शन दिया करें।"

अरुण–"तब अब मुझे इजाज़त दो; मैं जाना चाहता हूँ।"

गुलशन–"हाय ! आज भी मेरा अख़तियार नहीं, कि मैं आपको रोक सकूं ? आज भी मेरे यहाँ न रहोगे ? मैं कैसी बद-क़िस्मत हूँ।" इतना कह वह ज़ार-ज़ार रोने लगी।

अरुण–"उठो ! उठो !! प्यारी गुलशन ! ऐसा न करो। मैंने इतना बड़ा काम अपने सिर पर उठाया है, जिससे मुझे एक क्षण की भी फ़ुरसत नहीं है। तुम मुझे यहाँ ही रखना चाहती हो ?"

गुलशन–"हाँ, बस, मैं इतना ही चाहती हूँ।"

गुलशन ने आशा भरे हृदय से उठकर अरुण के गले में हाथ डाल दिया।

अरुण–"अच्छा, कल तुम्हें मालूम हो जायगा, कि यह

कैसे हो सकता है ? अब आज मुझे इजाज़त दो, रात के अब बारह बज गए हैं।"

बड़े ही करुणापूर्ण स्वर में गुलशन ने पूछा—"तब क्या आज आप जाना ही चाहते हैं ?"

अरुण—"हाँ, मुझे जाना ही पड़ेगा।" इतना कहकर वह उठ खड़ा हुआ और गुलशन दरवाज़े तक उसके साथ आई। अरुण जूता पहनने लगा।

गुलशन—"क्या जाते वक्त एक बोसा भी—"

गुलशन की बात काटकर अरुण ने कहा—"क्या अब भी तेरा दिल ऐय्याशी की लालच से ललचा रहा है। गुलशन ! गुलशन !! सच्चे प्रेम को पहचान ! ऐसे बोसों से क्या आता और क्या जाता है !"

गुलशन गला पकड़कर लटक पड़ी और कहने लगी—"आपकी यह फिलॉसफ़ी आपको ही मुबारक हो ! मुझे तो प्यार की फिलॉसफ़ी से मतलब है। आपको एक बोसा देना ही पड़ेगा।"

उसे अलग हटाते हुए अरुण ने कह—"अच्छा !"

अरुण के होंठों ने गुलशन के ललाट को चूम लिया। अनजान में गुलशन के माथे और ठोढ़ी पर अरुण का हाथ पहुँच गया। अरुण चला गया; गुलशन टकटकी बाँधे उसकी ओर देखती रही। एकाएक उसके मुँह से निकल पड़ा:—

"कैसी सुख की घड़ी थी !"

बारहवाँ परिच्छेद

आप मेरे गुरू हैं

समाज के जगाने का अभ्यास ही राष्ट्र की उन्नति का चिह्न है।

अरुण गुलशन के यहाँ से निकलकर चला। वह ऐसे विचार में डूबा हुआ चला, कि उसे अपने आस-पास कौन है, इसका कुछ भी ख़याल तक न रहा। उसका शरीर कठपुतली की तरह चल रहा था। रात के एक बजे का समय था। म्युनिसिपैलिटी के झिलमिलाते लैंप जल रहे थे। पुलिसवाले हाथ में मोटा डंडा लिए हुए "जागते रहो, जागते रहो" की आवाज़ें लगा रहे थे। वे ऐसी कोशिश कर रहे थे, मानो प्रजा के जानमाल की रक्षा के बदले वे रात भर जगाने की ही तनख़्वाह पाते हैं। पतली-पतली गलियों में तो वे बड़े भाग्य से जाते हैं। सिर्फ़ गली के नुक्कड़ पर पहुँचकर आवाज़ लगा दिया करते हैं; जिसमें यदि कोई चोर हो भी तो वह छिप जावे। कहीं-कहीं गली और महल्ले के सच्चे रक्षक कुत्ते भौंक रहे थे। कुछ दूर निकल जाने पर अरुण को मालूम हुआ, कि कोई आदमी सिर से पैर तक कपड़ा ओढ़े उसके पीछे-पीछे चला आ रहा है। अरुण उसे पहिचानने के लिये खड़ा हो गया। लेकिन वह आदमी समीप की एक गली में चला गया। अरुण ने उसके पीछे लगने की इच्छा की; लेकिन फिर वह विचार छोड़कर अपनी राह को लग गया। कुछ ही देर में वह अपने मकान पर पहुँच गया।

उस रात को वह बिलकुल ही न सोया। घर पहुँचकर उसने अपनी लकड़ी की संदूक से एक छोटी-सी किताब निकाली और उसके पेज उलटने-पलटने लगा। एक जगह वह बड़े ग़ौर से पढ़ने लगा उसमें लिखा था:—

"हर एक देश का उद्धार किसी संयोग से होता है। सबसे पहले यह जानने की ज़रूरत है, कि उद्धार करने के साधन कैसे होते हैं! कितने ही देशों में जल्दबाज़ नेता और अख़बार, देश के उद्धार के विषय में देश का दुःख और उसके उद्धार करने के यत्न से इतनी जल्दबाज़ी से हलचल मचाते और प्रजा के आगे ऐसा अधूरा उद्देश्य रखते हैं—बल्कि यों कहना चाहिए, कि प्रजा के आगे नहीं, पर प्रजा के बने हुए नेताओं के सामने रखते हैं और प्रजा के नेता कहलाने वाले देश में उसका ऐसा आँदोलन मचाते हैं, जिससे देश आगे बढ़ने की जगह पीछे हटता है। बेचारी प्रजा पतंग की तरह उड़कर निष्फलता की आग में जल मरती है। और ये नेता निष्फलता, निराशा और निरुत्साह के जन्मदाता बनते हैं। जिसका परिणाम यह होता है, कि देशोद्धार की बातें उनके हृदय में सदा के लिये दब जाती हैं। इससे यह न समझ लेना चाहिए, कि नेता या अखबारों के संपादक देश की दशा बिना देखे ही काम किया करते हैं; बल्कि उनकी कार्य-प्रणाली पूर्ण, व्यवस्थित या पक्की नहीं होती। प्रत्येक देश की उन्नति का आधार; वहाँ के नेताओं की गंभीरता, दीर्घदर्शिता, विचार की परिपकता, प्रजाकी शक्ति और स्थिति का पूरा ज्ञान, अपनी सुख लालसा और नियमितता के ऊपर निर्भर है। जब तक प्रजा की सच्ची हालत की पूरी जानकारी न हो, जब तक अपनी उन्नति के लिये

प्रबल आकांक्षा न हो, जबतक अपनी उन्नति करने के लिये जन्म भर अपना कर्त्तव्य समझ में न आवे, जबतक कर्त्तव्य-परायणता के लिये अपने सुख को त्यागने की तीव्र इच्छा न हो, तब तक राष्ट्र की उन्नति का पाया हमेशा कसा ही रहता है। राष्ट्रोद्धार के काम में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अच्छा काम करती हैं और पुरुषों को भी बलवान बनाती हैं। जिस देश को अपनी उन्नति करना हो, वह पहले–"

अरुण आगे बढ़ना ही चाहता था, इसी समय किसी ने उसका दरवाज़ा खटखटाया; वह पढ़ना रोककर विचार करने लगा:–

"इतनी रात को मेरा दरवाज़ा कौन खटखटा रहा है ? किसी को मेरे रहने के मकान की भी ख़बर नहीं, मेरे यहाँ कभी कोई आता ही नहीं। क्योंकि सबकी निगाहों में मैं एक बेग़म, नीरस और निष्काम मनुष्य समझा जाता हूँ। यही मेरे लिये हितकर भी है। तब यह कौन मेरे यहाँ आया है ? कोई होगा।"

ऐसा ही सोचकर उसने दरवाजा खोला। आनेवाले के चेहरे पर रोशनी पड़ते ही अरुण बोल उठा–"कौन, विनोद !"

"भैया ! मैं हूँ, विनोद।"

सचमुच आनेवाला विनोद ही था।

अरुण ने कुछ ताज्जुब के साथ पूछा–"इस समय कैसे ? ऐसा कौनसा काम है ? भला मेरा मकान तुमने कैसे जाना ?"

विनोद–"भैया अरुण ! आप नाराज न हों। मुझसे भूल हुई हो, तो माफ़ करें। मेरा हृदय आपकी ओर इतना खिंच रहा है, कि आप कहाँ रहते हैं और आपके साथ दिन-रात मैं कैसे रह सकता हूँ; यह विचार मेरे हृदय को आँदोलित कर रहा है। आप जानते ही हैं, कि मैं क्वाँरा हूँ। मैं सिर्फ़ दो बार खाना खाने

को घर जाता हूँ। बाकी समय आपके साथ छोटे भाई की तरह या सेवक की तरह रहना चाहता हूँ। मैं तुम्हारी आशा पूरी कर अपना जीवन सार्थक करना चाहता हूँ। इसप्रकार विनोद ने अपने मन का सारा गुब्बार निकाल दिया।

अरुण–"विनोद! तुम बहुत जल्दबाज़ी करते हो। जिस मनुष्य के साथ तुम्हारा इतना गहरा परिचय और प्रेम है, जिसने अब तक अपने रहने के मकान का पता तक नहीं बताया, जो मनुष्य अपने हृदय की बात किसी से प्रकट नहीं करता, जो हर एक मनुष्यों से अलग रहता है, जिसे कोई भी नहीं जानता कि कौन है और कहाँ रहता है, जो इतनी अच्छी तनख़्वाह पाने पर भी चिथड़े लटकाए फिरता है–हाथ में एक कौड़ी भी नहीं रखता, जो ग़रीब, दुर्गुणी, कुसंगी, विषयी, चोर वग़ैरह समाज के सड़े-गले अंगों के साथ रात-दिन रहता है, वेश्या, नाचने और गानेवालियों के घर बार-बार चक्कर लगाया करता है; ऐसे समाज के दूषणरूपी एक मनुष्य के साथ एक धनी के इकलौते लाड़ले लड़के का रहना और अपने भविष्य के उज्वल कर्त्तव्यों पर कालिख लगाना, किसी तरह भी उचित नहीं है? विनोद! विनोद!! तुम घर जाओ। क्या तुम नहीं जानते, कि मैं शहर की प्रसिद्ध गाने-वाली गुलशन के यहाँ से चला आ रहा हूँ?"

विनोद–"अरुण भैया! जानता हूँ, मैं अच्छी तरह जानता हूँ; लेकिन इससे क्या? आपका निज का चरित्र चाहे कैसा ही क्यों न हो, उससे मुझे क्या? आपका प्रतिभाशाली चेहरा और आपके विचार मुझसे साफ़ कह रहे हैं, कि ऐसी जगहों पर जाने में भी आपका कोई उच्च उद्देश्य अवश्य ही होगा।" इन बातों से

पहले विनोद के मन में यह शंका अवश्य थी, किंतु समय पर देखा जायगा—ऐसा ही विचारकर उसने इस समय ऐसा ही जवाब दिया।

अरुण—"विनोद ! अब भी समझकर देखो ! मैं शैतान आदमी हूँ; बल्कि मुझे तुम प्रत्यक्ष शैतान ही समझो। जो मनुष्य एक बार मेरे जाल में फँस जाता है, उसे मैं फिर नहीं छोड़ता। मेरी सत्ता अबाध्य है। एक बार मेरी सत्ता में आ जाने पर फिर वह कभी सिर ऊँचा कर देख तक नहीं सकता। अभी तुम मुझे पूरी तरह से नहीं पहिचानते; मेरे बाहरी दिखाव और भीतरी दिखाव में बड़ा अंतर है। क्या तुमने मुझे चोर, बदमाशों के साथ सड़े-गले होटलों में बातें करते कभी नहीं देखा है ! जब वह सब बदमाश मेरी मुट्ठी से बाहर नहीं निकल सकते, तब तुम क्या चीज़ हो ? विनोद ! विनोद !! मुझे तुमपर दया आ रही है। तुम मेरी सत्ता के जाल में फँसने से पहले निकल जाओ।"

अरुण ने विनोद के हृदय को कसौटी पर कसते हुए कड़े स्वर में ये बातें कही थीं, लेकिन विनोद अपने विचार पर ज्यों का त्यों अटल बना रहा।

विनोद ने स्पष्ट स्वर में उत्तर दिया—"भैया अरुण ! मैं कभी भी न जाऊँगा। तुम्हारी जो इच्छा हो करो, लेकिन मैं तो तुम्हारी छाया बनकर ही रहना चाहता हूँ।"

अरुण ने मुस्कराते हुए कहा—"तब ठीक है ! लेकिन तुम्हें बहुत-सी प्रतिज्ञाएँ भी करनी पड़ेंगी।"

विनोद—"मंजूर है।"

अरुण ने संदूक में-से एक छोटी डिबिया निकाल, उसके

भीतर से एक तस्वीर निकालकर विनोद के हाथ में रख दी और कहा—"इस तस्वीर को हाथ में ले, परमात्मा का स्मरण कर प्रतिज्ञा करो, कि बिना मेरी आज्ञा के मेरे साथ रहकर जो कुछ देखोगे, या जानोगे, उसे किसी के आगे प्रकट न करोगे। हमेशा देशोद्धार का विचार और विचार के अनुसार काम करोगे। किसी पर डाह नहीं करोगे और सबको अपना भाई समझ कर मेरी आज्ञा के अनुसार काम करोगे।"

विनोद—"सब मंजूर है!"

इसप्रकार विनोद ने प्रतिज्ञा की। आज इतने दिन के प्रेम के बाद अरुण और विनोद गले से गले मिले। विनोद का हृदय आनंद से उमँड़ उठा। इसके बाद अरुण ने अपनी नोटबुक उसके हाथ में देकर आगे बढ़ने को कहा। विनोद पढ़ने लगा।

"जिस राष्ट्र को अपनी उन्नति करना हो, उस राष्ट्र के विद्वान् नेताओं को सबसे पहले चाहिए, कि समाज की स्थिति का पूरा-पूरा ज्ञान कर ले। ऐसा-वैसा ज्ञान नहीं, उनको चाहिए, कि समाज के प्रत्येक अंग में घुसकर उनके सच्चे आँतारिक विषयों का ज्ञान प्राप्त करें। धनवान्, विद्वान् या केवल अखबारी संपादकों के विद्वत्तापूर्ण लेख और ओजभरी भाषा पर ही न भूलें; उसी प्रकार धनियों के फिजूल खर्ची पर न भूल जाना चाहिए। यह विचार करना चाहिए, कि अपनी समाज की उन्नति करने में कौन शक्तिमान है। सामान्य नियम यह है, कि देश में हुनर, उद्योग और आर्थिक विषय की वृद्धि हो, समाज की प्रत्येक जाति समान, पर अच्छी स्थिति में हो, उसी अवस्था में वह देश या राष्ट्र अपनी भोग-लालसा को छोड़ सकता है। लेकिन इसमें प्रत्येक

के साथ भ्रातृभाव होना चाहिए। कितने ही लोग धर्म अथवा अपनी जाति के भ्रातृभाव को ही उत्तम मानते हैं। किंतु यह सिर्फ़ उनका बेहूदापन है। जब तक तुम हर एक क़ौम या हर एक धर्म की तरफ़ भ्रातृभाव और इज्ज़त की दृष्टि से देखते हो, तब तक तुम्हारे हृदय में भेद-भाव कभी भी आड़े नहीं आ सकता।

सामान्य रूप से समाज–धनी, मध्यम और ग़रीब श्रेणी-इन तीन श्रेणियों में विभक्त होता है। इसमें ज़रा ध्यान देकर देखा जाय, तो अमीर और ग़रीब–यह दोनों ही अपनी एक राह को बदल, दूसरी राह पर जाकर आराम पा सकते हैं, परंतु मध्यम श्रेणी के लिये कोई भी राह बदली नहीं है। जो देश रुपए को ईश्वर मानता है, स्वार्थ को साधुता समझता है और अपने मन की इच्छा को ही नीति समझता है; उस देश की सच्ची उन्नति की पहुँच नहीं होती, फिर भी समाज के लोग हर तरह से सुखी होते हैं या अपने को सुखी समझते हैं। परंतु हिंदू लोग जिसे उन्नति कहते हैं, उस दर्जे तक तो लोग करोड़ों वर्ष में भी नहीं पहुँच सकते। क्योंकि उनकी यह अपनी मनमानी उन्नति थोड़े ही दिन की होती है। यह स्वार्थ, ईर्षा, और मद रूपी ईंट, मट्टी और पानी से बनी हुई नींव पर स्थापित है। सच्ची उन्नति में भ्रातृ-भाव, सहकारिता, आर्थिक स्थिति और नीति के साथ आत्म-सुख का परिमाण बढ़ता है।

"हम लोग हिंदू हैं। इसलिये यदि हम लोग अपनी हालत की ओर देखेंगे, तो सहज ही में समझ में आ जायगा, कि अभी हम लोगों को बहुत कुछ करना है। जो कुछ करना है, उसके हो जाने के बाद हम लोग अपनी उन्नति की आशा भी कर सकते

हैं। हम लोग अपने राजा से स्वराज्य माँगते हैं; इसमें हम लोगों की यही इच्छा है, कि राजा हमें बहुत बड़े-बड़े अधिकार दे दे। किंतु ऐसी आशा बिलकुल व्यर्थ है। किसी देश पर तुम्हारा निजी अधिकार हो, और उस देश से तुम्हें अच्छा लाभ हो, तो क्या उस अधिकार को तुम राजी-खुशी छोड़ सकते हो ? कभी नहीं; इस संसार में ऐसा कोई देश नहीं है, ऐसी कोई परतंत्र शक्ति नहीं है, ऐसा कोई मनुष्य नहीं है, कि जो दूसरे की उन्नति के लिये अपने स्वार्थ को तिलांजलि कर दे। अगर कोई मनुष्य, देश या प्रजासंघ, इसप्रकार अपने अधिकार को बेचने की इच्छा करता हो, तो अच्छी तरह समझ लेना चाहिए, कि यह केवल उसका ऊपरी दिखावा मात्र है; यह केवल.........करने की एक क्रिया मात्र है—इसमें उसका स्वार्थ है, उसका हित है, विश्व ब्रह्मांड को ही विधाता ने इसप्रकार बनाया है, कि उसका सब काम स्वार्थ के सूत्र से ही है। अनेक समय वह सूत्र कभी बहुत भद्दा और कभी बहुत ही बारीक होता है। भद्दा स्वार्थ उसे कहते हैं, जिसे सब लोग सहज ही में समझ जाते हैं। किंतु जिस स्वार्थ में बारीकी है, उसमें यह मालूम नहीं होता, कि इसमें स्वार्थ है। जहाँ संसार का चलन ही ऐसा है, वहाँ अपनी सत्ता के लिये राष्ट्र को दोष देना व्यर्थ है। अपने में उत्साह हो, देश-भक्ति हो, उन्नति की तीव्र इच्छा हो, तो उन्नति की राह पर धीरे-धीरे एक-एक क़दम बढ़ाना चाहिए।"

अरुण—"कुछ समझे, विनोद ?"

विनोद ने जवाब दिया—"समझ गया भैया ! यह तो बहुत ही सीधी-सादी, स्पष्ट और सरस भाषा में समझाया गया है,

जिसमें इसे प्रत्येक मनुष्य सहज में समझ ले।

अरुण—"विनोद! पढ़ जाना और समझ लेना—इन दानों में ज़मीन और आसमान का फ़रक है। पढ़ जाना सहज है, किंतु समझना कठिन। समझना उसे कहते हैं, जिसे हृदय में रक्खें और उसीके अनुसार काम करें। संसार में लोग कहते हैं, एक दिन तो मर ही जाना है, साथ में कुछ न जायगा! हाथ पसारे जाना पड़ेगा, इसलिये उपकार करना ही कर्त्तव्य है! ऐसा कहनेवाले ख़ुद ऐसे-ऐसे कुकर्म करते हैं, जिसके सुनने से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। तब क्या यह माना जा सकता है, कि जो कुछ वह करता है, वह सब समझकर ही करता है। कभी नहीं! ये तो तोते की तरह टरटरा देते हैं, और कुछ भी नहीं समझते। जब बात अच्छी तरह समझ में आ जाती है, तो उस समय के अनुसार ही बर्ताव भी होने लगता है। जब तक मनुष्य अपने शब्दों का मतलब और क़ीमत नहीं समझता और उसी के अनुसार बर्त्ताव नहीं करता, तब तक वह कुछ भी नहीं कर सकता। मनुष्य अपनी वाणी पर अंकुश रक्खे; सत्य, प्रिय और ज़रूरी ही बातें कहे; जो कहे उसका अर्थ और मूल्य का विचार कर, उसी के अनुसार काम करे, तो वह सदा विजयी हो सकता है; ऐसा ही बड़ों का कहना है!"

विनोद—"सत्य है भैया! जो मेरी समझ में न आएगा, उसे रोज़ बरोज़ के अभ्यास से समझने की आदत डाल लूंगा और कर्त्तव्य का पालन करूंगा। लेकिन भैया अरुण! क्या समझने से समझाना कठिन नहीं है?"

अरुण—"ज़रूर है! समझनेवाले से समझानेवाले को तो मानो उसी में लीन हो जाना पड़ता है।"

विनोद—"भैया! मैं हमेशा आपसे ही उपदेश लिया करूंगा; आज से आप मेरे गुरु हुए।"

तेरहवाँ परिच्छेद

उन्नति की राह

पूर्वकथनानुसार देश की स्वतंत्रता के लिये अपना पैर आगे बढ़ाना चाहिए। विनोद ने और आगे पढ़ा—प्रत्येक इच्छित वस्तु के प्राप्त करने के दो रास्ते हैं। पुराण और धार्मिक ग्रंथों में अपना इतिहास है। इतिहास के वीर, शृंगार, करुण, रौद्र, गंभीर, नीति और ज्ञान आदि गाथाओं को हमलोग धार्मिक पुस्तक समझते हैं। उनका हम लोग रात-दिन स्मरण और मनन करते हैं और वे पुस्तकें हमको हमारे कर्त्तव्य की राह बताती हैं। सिर्फ़ इतना ही नहीं, हमलोग यह भी मानते हैं कि उन गाथाओं में वर्णित कर्त्तव्य के अनुसार मनुष्य मोक्ष पाता है। उसमें ईश्वर जैसी समदृष्टिशाली शक्ति को प्राप्त करने या प्रसन्न करने के लिये हजारों मार्गों में सिर्फ़ दो मार्ग हैं-एक प्रेम का और दूसरा शत्रुता का। ध्रुव और प्रह्लाद आदि ने प्रेम-भक्ति का मार्ग लिया था और रावण, कंस आदि ने शत्रुभाव का मार्ग लिया था। किसी भी वस्तु के प्राप्त करने के लिये संसार में येही

दो मार्ग हैं। एक प्रेमभाव और दूसरा शत्रुभाव। हिंदुओं ने कितने ही वर्षोंतक प्रेम-भाव और भक्ति-भाव का अवलंबन किया; किंतु इससे उन्हें कोई लाभ न हुआ। अब अगर हिंदू शत्रुभाव की ओर झुकें, तो उनका यह झुकाव स्वाभाविक समझा जायगा। किंतु भारतवर्ष अन्य देशों की तरह स्वार्थ के खूंटे में बँधा नहीं है; भारत का पाया तत्वज्ञान के ऊपर है। इन्हें शत्रुता पसंद नहीं है। कदाचित कोई उतावलेपन में आकर उस राह को ग्रहण भी करे, तो उस मार्ग में उसे विजय नहीं मिलती। जो शत्रुता और प्रेम-दोनों ही में निष्फल जाते हैं, उन्हें यह विचार करना पड़ता है, अब कौनसा राह ग्रहण करें। सत्याग्रह एक अच्छा मार्ग माना गया है, लेकिन इसके लिये परिपक्वता की आवश्यकता है। इस परिपक्वता की स्थिति के लिये हाल में ………… है। इस ……को कोई चाहे कुछ ही क्यों न माने—कोई उसके पक्ष में हो या विरुद्ध—यहाँ उसके बारे में कुछ कहने की ज़रूरत नहीं। नीचे जो कार्यप्रणाली प्रकट की गई है, उसपर विचारकर काम में लाने का प्रयत्न करना और स्वतंत्र होने या स्वराज्य लेने का विचार छोड़ कर्त्तव्य-परायण होना चाहिए। इसका फल आप-ही-आप मिलेगा। उस फल की पूर्णता तुम्हारी कार्यप्रणाली और कार्यदक्षता पर निर्भर है।

इसका आरंभ कितने ही गाँवों से होना चाहिए। गाँव के प्रत्येक व्यक्ति को यह समझ लेना चाहिए, कि एक गाँव में चाहे वे कितनी ही ग़रीबी की हालत में क्यों न हों, वे समूचे देश के पालनकर्त्ता हैं। उन्हीं की मेहनत से देश का पालन होता है; फिर भी उनकी स्थिति कितनी दुःखद है। गाँव के खेतिहर अपने खेतों

में पैदा हुए अनाज और कपास में-से अपने एक वर्ष के गुज़र लायक़ सामान रख लें, बाकी माल वह अपने गाँव के नियत किए हुए पंच को दे दें। यह पंचायत या सहकारी मंडल उस गाँव के बनिएँ और अमीरों द्वारा बनना चाहिए। वह पंचायत उन सब के माल में एक वर्ष चलने लायक़ माल रखकर बाकी माल और गाँव या शहरों में बेंच दें। इसप्रकार उस माल से जो रुपए मिलें, या जो नफ़ा हो, उसे पंचायत उन खेतिहरों के माल के हिसाब से बँटवारा कर दें। अगर दूसरे वर्ष अकाल जान पड़े, तो अमानत रक्खे हुए माल को गाँव के खेतिहर प्रजा में पड़ता के हिसाबसे बेंच दें। खेतिहरों को माल देकर उन पर मंडली बहुत कम ब्याज रक्खे। यदि ऐसा हो, तो गाँव की पैदाइश में गाँव के लायक़ माल भी बना रहे और उन चीज़ों के लिये गाँव के लोगों को किसीपर भरोसा भी न करना पड़े। खेतिहर और मज़दूर लोग, जो खेती के काम से खाली हो गए हों, वे सब सहकारी मंडल द्वारा स्थापित कला-कौशल-शालाओं में जाकर कारीगरी और उद्योग सीखें; जिसमें अपने गाँव में ज़रूरत पड़े, तो काम करें और अपने घर के कपड़े के खर्च के लिये घर ही में कताई-बुनाई का काम करें; जिसमें हर गाँव की ज़रूरी चीज़ों के लिये प्रत्येक गाँव ही में कारख़ाना बन जाय। इसके बाद अन्यान्य कारख़ानों का भी लक्ष्य रक्खें। इस तरह निरुपयोगी न रहने से उनको भूख का दुःख तो टल ही जायगा, इसके अतिरिक्त अपने गाँव की बनी हुई चीज़ों द्वारा आराम भी मिलेगा। हम लोग जो स्वदेशी की धूम मचाते हैं, उसके लिये जब तक अपना गाँव ज़रूरी पैदा न करे, तब तक उनको दूसरे

गाँव की चीजें लेना चाहिए। लेकिन इससे दूसरे गाँव का भरोसा करने की आदत सीखना चाहिए। इन सब विषयों को साध्य बनाने के लिये एक यही राय है।

सब सहकारी मंडलियाँ बैंकों की तरह आपस में सब साथ रख सकती हैं और एक दूसरे को मदद भी दे सकती हैं। ऐसा प्रबंध होना चाहिए, कि प्रत्येक गाँव में एक-एक सहकारी मंडली हो और वह मंडली प्रत्येक गाँव की खबर रक्खे।

इसके बाद शिक्षा, अर्थात् पढ़ाई के लिये गाँव के विद्वानों ही की एक मंडली बनावे, जो शिक्षकों को नियुक्त कर सके और अभ्यास का नियम बना सके। पढ़ाई के नियम के साथ-साथ मातृ-भाषा और उस गाँव के योग्य कारीगरी तथा खेती-बारी की विद्या के ज्ञान का भी समावेश होना चाहिए। यह भी नियम होना चाहिए, कि कितने वर्ष में यह पढ़ाई समाप्त होना चाहिए। इसके बाद प्रजा और नौकरशाही तंत्रों के ज्ञान के साथ देश को भिन्न-भिन्न भाषाओं का भी कुछ ज्ञान अवश्य होना चाहिए। मतलब यह है कि ऐसा नियम बनाना चाहिए, जिसमें कारीगरी सीखने के साथ-ही-साथ सोलह वर्ष की उम्र में मातृ भाषा और अन्य भाषाओं का भी ज्ञान हो जावे।

उपरोक्त नियम से 'पास' हो जाने पर प्रत्येक विद्यार्थी अपनी स्वतंत्र जीविका का ठिकाना करना चाहिए। इसका काम को जाने पर वह अपना विवाह कर सकता है; इससे पहले वह विवाह न कर सकेगा। इससे पहले कोई उसे अपनी कन्या न दे, इस प्रकार वह गाँव अपने पर भरोसा करने के साथ-साथ दरिद्रता को भी दूर कर सकता है। गृहस्थ बनने के बाद आज-कल
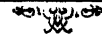
जैसा हम देखते हैं, वैसे बड़ी कठिनता से एक समय अन्न खानेवाले दरिद्र देवताओं की पूजा करनेवाले और तीन-चार बच्चों के होने के बाद चिथड़े लगानेवाले दंपति न दिखाई देंगे; बल्कि मज़बूत बलवान और सुखी दंपति नज़र पड़ेंगे।

व्यापारियों को चाहिए, कि गाँव की ज़रूरी चीज़ें गाँव में बेंचें। जब तक गाँव की आर्थिक दशा न सुधरे, किसी चीज़ की अत्यंत आवश्यकता न हो, तब तक व्यापारी लोग फ़ालतू चीज़ें अपने गाँव के भीतर आने ही न दें। प्रजा को भी ऐसी चीज़ों का बहिष्कार करना चाहिए। गाँव में होनेवाली सब चीज़ों तथा कला-कौशल-भवन की बनी हुई चीज़ों को अपनी खपत के लिये रखकर बाकी को दूसरे-दूसरे गाँवों में बेच देना चाहिए।

नगर के महल्ले-महल्ले में प्रतिनिधि का चुनाव होना चाहिए। इन प्रतिनिधियों की मंडली समूचे नगर की बस्ती के लोगों की मंडली बनेगी, जो प्रत्येक काम में अपनी राय देने का काम करेगी। इस मंडली के प्रतिनिधि तीन वर्ष के लिये होने चाहिए। बाद को नया चुनाव होना चाहिए। न्याय भी यही मंडली करे। अगर एक-दूसरे महल्ले में किसी से झगड़ा होजाय, तो सब प्रतिनिधिगण सहकारी या जूरी की तरह इकट्ठे होकर फैसला करें। नगर की रक्षा का भार बस्ती की लड़ाकी जाति पर रहना चाहिए। नगर का कोई स्थान स्वयं-सेवा के लिये नियत कर देना चाहिए और उसमें स्वयं-सेवक लोग अपना निर्वाह करें। स्वयं-सेवक लोग ग़रीब और अशिक्षित लोगों को पढ़ाएँ, सफ़ाई और तंदुरुस्त रहने के नियम सिखाएँ, नगर में होनेवाले दुर्गुणों को रोकें। नगर के ज़रूरी सभी काम प्रतिनिधिगण करें।

आस-पास के अमुक-अमुक नंबरों की बस्तियों को मिलाकर एक ज़िला बनाया जावे। उन नगरों के प्रतिनिधियों का चुनाव कर उससे एक ज़िला प्रतिनिधि-मंडल बनाया जावे, इसी तरह जिलों से प्रांत-प्रतिनिधि-मंडल बने। प्रजातंत्र या राजकीय व्यवस्था संबंधी तथा पर राष्ट्र से बर्ताव संबंधी काम यही मंडल करे। इस तरह मिलजुलकर काम करने से पुलिस, कचहरी, आबकारी तथा चुंगी जैसे मुहकमों को प्रतिनिधि-मंडल के सुपुर्द कर देने पड़ेंगे। उनका जो-कुछ खर्च बचेगा, उसे देश के लोगों को कला-कौशल सिखाने में खर्च किया जाना चाहिए। प्रजा के कर आदि घटा दिए जाने चाहिए।

राज्यतंत्र प्रजा के ऊपर कर क्यों लगाता है ? राज्यतंत्र का ख़र्च निभाने के लिये। और राजतंत्र इसे किस काम में ख़र्च करता है ? प्रजा की रक्षा और सुख-शांति के काम में। अगर प्रजा आप ही अपनी रक्षा, सुख-शांति और उन्नति का भार उठा ले और जो-जो मुहकमें प्रजा-हित के लिये बनाए जाते हैं, उन्हें आप ही चला ले, तो राजतंत्र को अपने अधिकार में उन मुहकमों को क़ायम रखने की ज़रूरत नहीं रहती; तब उन मुहक़मों का ख़र्च निभाने के लिये किसी कर की भी ज़रूरत नहीं रह जाती।

इस तरह, या इससे मिलती-जुलती कोई व्यवस्था कर के प्रत्येक समाज को अपनी-अपनी व्यक्तिगत उन्नति का उपाय निकालना चाहिए। इस प्रकार समाज मिल-जुल कर काम करे, तो देश की उन्नति का मंत्र सिद्ध हो जायगा।

अब अगर ऐसी शंका हो, कि जो प्रजा परतंत्र दशा में पड़ी है, वह अगर अपनी उन्नति के लिये इस तरह का काम करना

चाहे, तो राजतंत्र उसके इस काम में बाधा दे सकता है या नहीं? अगर ऐसा हो, तो क्या करना चाहिए?"

अरुण,—"विनोद! अब बस करो। अब आगे फिर किसी समय पढ़ेंगे। बहुत भोजन से अधपचा हो जाता है। इसलिये धीरे-धीरे खाना चाहिए, एक बारगी नहीं।"

विनोद ने पुस्तक बंद कर दी। अरुण और विनोद—दोनों ही सो रहे। रात बहुत व्यतीत होने से निंद्रादेवी का साम्राज्य भी बहुत बढ़ गया था। किंतु इन दोनों देश-भक्तों के हृदय में देश-भक्ति के विचार का साम्राज्य हलचल मचा रहा था।

चौदहवाँ परिच्छेद

अरुण कौन है?

रणछोड़ के जाने के बाद ऊषा मदनराय से छुटकारा पाकर अपने कमरे में गई। वह रणछोड़ की स्थिति के साथ-साथ समाज के ऐसे ही अन्यान्य मनुष्यों की स्थिति का विचार करने लगी।

"मेरी तरह रात-दिन ऐशोआराम में रहने और मौज की ज़िंदगी भोगनेवाले को ऐसे ग़रीब मनुष्यों के दुःख की क्या ख़बर? अरे, स्वप्न में भी ख़बर नहीं होती! इस संसार में मुझसे सुखी दिखाई देनेवाले, लेकिन भीतर से दुःख भोगनेवाले कितने मनुष्य हैं? हरे हरे! हमारे जैसे अमीरों को रोज़ पाव भर घी और दो सेर दूध मिले, तो वह भी थोड़ा है। इन बेचारे ग़रीबों को अगर रुपए भर घी भी रोज़ मिले, तो ये ईश्वर को

धन्यवाद करते हैं। ऐसे भड़कदार कपड़ों से क्या फ़ायदा ? सादे और ज़रूरी कपड़े बनवाने से सैकड़ो रुपयों की बचत हो सकती है, तब उन रुपयों को ग़रीबों की मदद में क्यों न लगाया जाए! सुंदरता बढ़ाने के लिये हज़ारों रुपए के जवाहिरात पहने जाते हैं, लेकिन वह किस मसरफ़ के हैं ? इनके पहनने में कौनसा सौंदर्य है ? सौंदर्य किसमें है ? गहनों से सजधजकर किसी की नज़रों में सुंदर दिखाई देना किस काम का ? अहा ! जब मनुष्य विचार करने बैठता है, तब उसे अच्छी राह दिखाई देती है। फिर भी उस राह पर कोई नहीं चलता। सत्य मार्ग पर चलने में हज़ारों लालचें ललचाती हैं; उस लालच को दूर करना बहुत कठिन काम है।

"पिता ने अब तक मेरा लालन-पालन किया। उन्होंने मुझे यह न जानने दिया कि दुःख, ग़रीबी और मुफ़लिसी किसे कहते हैं। मेरी पुस्तकें ही मेरे ज्ञान का भंडार और सब कुछ हैं। आज मुझे एकाएक मालूम हुआ, कि उपन्यास और नाटकों में चित्रित किए हुए ग़रीबों के वर्णन केवल वर्णन ही नहीं है; बल्कि सत्य है। इस विषय को आज मैंने अपनी आँखों देख लिया। जब तक अपनी समाज में इतने दुःखी मनुष्य हैं, तब तक अपने को मनुष्य समझने और आदमी कहलाते हुए मौज करने का क्या हक़ है ? क्या अपने हक में-से कुछ हिस्सा ऐसे दुःखी और दीन मनुष्यों में बाँटने में आदमीयत नहीं है। क्या दुखियों को देखकर मुँह फेर लेने में आदमीयत है ? शिव ! शिव !! शिव !!!"

ऊषा—पराए के दुःख से दुःखी होनेवाली सरला ऊषा ऊपर लिखे मुताबिक विचार—सागर में गोते लगा रही थी। इसी

समय उसकी माता चंदन ने आकर उसके विचार स्रोत को भंग कर दिया।

"बेटी ऊषा! इधर तो आ। यह तेरे लिये हीरे की चूड़ी और साड़ियाँ मँगाई गई हैं, पसंद कर तो सही। जो नापसंद हों, उसे मैं वापस कर दूं।"

ऊषा ने माता के पास जाकर एक-एक कर सब नमूने देखे। बाद सबको रखकर ठंढी साँस खींचती हुई बोली–"माता! मुझे यह सब पसंद नहीं। मुझे यह चूड़ियाँ और साड़ियाँ न चाहिए।"

चंदन–"बेटी! तूने ही उस दिन कहा था; इसलिये मैंने तेरे पिताजी से कहकर यह सब चीज़ें मंगवाई हैं; अब क्यों तूँ नापसंद करती है? इससे भी क़ीमती चाहिए क्या? केवल इन चूड़ियों का दाम ही दस हजार रुपए–"

"नहीं! नहीं!! माँ" चंदन की बात काटकर ऊषा ने कहा–"मुझे इससे क़ीमती भी न चाहिए। क्यों माँ! तुम मुझे खुश रखने के लिये इतने रुपए क्यों खर्च करती हो?"

चंदन–"तेरे लिये, और क्यों? बेटी! मेरे लिये तो तू लड़के के समान है।" यह कहतेहुए चंदन ने उसके सिर पर अपना हाथ फेरा।

ऊषा–"माँ! जितने रुपए इस तरह तूँ मेरे लिये खर्च करने को तैयार है, उतने रुपए तूँ मुझे दे दे। मैं अपनी ख़ुशी के मुताबिक़ उन रुपयों को खर्च करूंगी और बहुत खुश होऊंगी। मुझे खुश रखने में ही तुझे संतोष है न?"

चंदन–कुछ उत्सुकता के साथ पूछा–"यह तो है ही। लेकिन तूँ इतने रुपए लेकर क्या करेगी?"

ऊषा—"मैं भूख और कष्ट से पीड़ित मनुष्यों की सहायता करूंगी।"

चंदन—"बेटी! तेरे हृदय में यह सब विचार कैसे उत्पन्न हुए? मनुष्य अपने भाग्य के अनुसार सुख-दुःख भोगता है; उन्हें तेरी दया से सुख नहीं मिल सकता। जिनके भाग्य में दुःख ही बदा है, उन्हें सुख कैसे मिल सकता है?"

ऊषा—"तो क्या तुम यह समझती हो कि मनुष्य पुरुषार्थ से अपने भाग्य को पलट नहीं सकता?"

चंदन—"तूँ चाहे जो समझ, किंतु मुझे तो यही सच जान पड़ता है कि मनुष्य अपने भाग्य के वश में है।"

ऊषा—"लेकिन माता! भाग्य कर्म के वश है और कर्म ही पुरुषार्थ है। किए हुए कर्म से ही प्रारब्ध बना है और अब जो कर्म और पुरुषार्थ किया जावेगा, उससे बाद का प्रारब्ध बनेगा। इसलिये उस बननेवाले प्रारब्ध को अच्छे पुरुषार्थ से उत्तम प्रारब्ध क्यों न बनावें? यह तो अपने ही हाथ है; कंगाल गरीबों को सका अवसर कहाँ? इसलिये तूँ अपनी पुत्री के होनहार प्रारब्ध को उत्तम बनाने के लिये उसके सत्कर्म में मदद दें।"

चंदन ने ऊषा के विचारों को फेरने का प्रयत्न करते हुए कहा—"मैं इतने लंबे-चौड़े उपदेश नहीं समझती। मैं तो स्त्रियों के प्रारब्ध को उत्तम बनाने के लिये इतना ही कह सकती हूँ, कि स्त्रियों को पातिव्रत, नीति और धर्म को पालन करते हुए, पति की सेवा में लीन रहना चाहिए और पति को प्रसन्न रखना चाहिए। यही उसके लिये अपना भावी प्रारब्ध बनाना है।"

ऊषा—"यह सत्य है, लेकिन विवाहिता स्त्रियों के लिये।

हमारी जैसी कुमारियों के लिये नहीं। विवाहिता स्त्रियों को तो यह धर्म पालना ही चाहिए। मैं जो कह रही हूँ, वह धर्म-कर्त्तव्य है; मनुष्यों के लिये संसार में यही कर्त्तव्य है और इसी कर्त्तव्य के लिये मैं तुमसे कह रही हूँ।"

चंदन—" तो बेटी ! तूँ कब तक इस तरह कुमारी बनी रहेगी ? "

ऊषा—"देखा जावेगा। जब तक मुझे विवाह की आवश्यकता न होगी, तब तक मैं कुआँरी ही रहूंगी।"

चंदन—"बेटी; तुम्हारे पिताजी बहुत चिंता किया करते हैं। तेरी-सी विद्वान पुत्री को गुणवान पति के साथ विवाह देने को वे बहुत उत्सुक हैं। बेटी ! अब तेरी उम्र भी हो गई है। अब कब तक ऐसा हठ किया करोगी। जातिवाले आपस में काना-फुंसी किया करते हैं। कहते हैं कि लड़की को बहुत मुँह लगी बना लिया है। विवाह नहीं करते, तो क्या जन्म भर कुआँरी ही रक्खोगे। कोई-कोई तो बदनाम भी करने लगे हैं। अब तूँ ही विचार कर।"

ऊषा—"माँ दुनियाँ दुरंगी है। लोगों की बातों पर तुम क्यों ध्यान देती हो ? जब तुम मुझमें किसी प्रकार का दोष देखना, तब जो जी चाहे कहना।"

चंदन ने बहुत ही प्रेम से कहा—"तुझमें दोष निकालने की शक्ति विधाता में भी नहीं है। तूँ मेरे हृदय का टुकड़ा है। मेरी बहुत इच्छा है कि तुझे संसारी देखती। अहा ! तेरी-सी सुंदरी लड़की वस्त्र और गहनों से तो सुशोभित है ही, अगर दो बालक भी तेरी गोद में खेलते देखूं, तो मुझे कितना आनंद हो। बेटी !

मेरी बात मान; मैं चाहती हूँ, कि मरने से पहले तेरी ओर से सुखी हो लूँ।"

ऊषा–"माँ! क्या गृहस्थाश्रम में हमेशा सुख ही मिला करता है? क्या तुमने कितने ही घरानों को दुःख में पड़े नहीं देखा है? माता! मोह और सुख की इच्छा ही दुःख का कारण है। तेरी इच्छा है, तो तू मुझे गृहस्थ बना दे; विवाह कर दे, लेकिन—"

माता ने लड़की के मुँह से विवाह की बात निकलते सुनकर उत्सुकता के साथ कहा–"लेकिन क्या, बेटी!"

ऊषा ने अपना मनोभाव प्रकट करते हुए कहा–"मैं विवाह करूँगी, तो किशोर के साथ ही! सिवा उसके और किसीसे भी विवाह न करूँगी।"

चंदन–"बेटी; किशोर कहाँ मिलेगा? आज पाँच साल से उसका पता ही नहीं है। सेठ माधवलाल और नर्मदा—बेचारे अपने बड़े लड़के के जाने के बाद से कितने दुखी हैं। सेठ माधवलाल ने बहुत खोज की, लेकिन उसका पता न लगा। जो वह देशाटन का नाम करके गया, फिर आज तक न लौटा। उसके जाने के बाद से कोई ख़बर ही न मिली। किसी को ख़बर नहीं; कि वह कहाँ है और कैसे है? भगवान् जाने क्या हुआ—"

ऊषा बात काटकर बोल उठी–"ऐसा अशुभ मुँह से न निकालो। भगवान करें, किशोर जहाँ हो, वहाँ अच्छी तरह रहे। मेरा हृदय कहता है कि अगर वह बीमार होता या किसी तकलीफ़ में होता, तो मुझे बिना ख़बर दिए न रहता। कभी-न-कभी वह आएगा ही, जब वह आएगा, तभी मेरा विवाह भी होगा।"

माता ने आशीर्वाद देते हुए कहा—"भगवान तेरी इच्छा सफल करे।"

अब ऊषा अकेली रह गई। वह रणछोड़ के घर खबर लेने को आदमी भेजकर स्वयं किशोर की चिंता करने लगी।

"मैं भी कैसी मूर्ख हूँ। किशोर! मेरे प्यारे किशोर! तुम कितने प्रेमी और कितने सरल हो! मैंने नाहक़ तुम्हारा दिल दुखाया। नाहक़ तुम्हारी आत्मा को क्लेश देने गई। अभिमानी अमीर के बालक को बात लग गई। अगर मैं कटु वचन न कहती, तो वह न जाते। अब पछताना व्यर्थ है। न जाने किस घड़ी मेरे मुँह से वह शब्द निकले।"

प्रिय पाठक! आप लोगों को अधिक कौतूहल में रखना उचित नहीं। सेठ माधवलाल को किशोर नामक एक पुत्र था। ऊषा से वह पाँच-छः वर्ष बड़ा था। मदनराय के यहाँ उसका अक्सर आना-जाना होता ही रहता था। इसलिये उससे और ऊषा से बचपन का परिचय था। दोनों ही देर तक एक साथ बैठकर पढ़ते, खेलते, बातें करते और समाज तथा देशोद्धार के विषय में बहस करते थे। धीरे-धीरे दोनों का हृदय मिल गया। यह बात सेठ माधवलाल और मदनराय से भी छिपी न रही। वे दोनों ही इस संबंध से राज़ी थे, दोनों ही अपने मन में इस विवाह के बारे में निश्चय कर चुके थे। इसी बीच में एक दिन किशोर अपने जन्म-गाँठ के उपलक्ष्य में एक खूबसूरत अँगूठी ख़रीद लाया। बड़ी प्रसन्नता के साथ उछलते हुए हृदय से उसे उसने ऊषा के हाथ में पहना दिया। ऊषा ने उस अँगूठी को वापस करते हुए कहाः—

"किशोर ! यह अँगूठी तो सेठ माधवलाल की कमाई है; मुझे तो तुम्हारी कमाई की अँगूठी प्रिय जान पड़ेगी । जब तुम रुपए पैदाकर मुझे अँगूठी पहनाओगे, तब मैं पहनूँगी ।"

बस, ग़ज़ब हो गया । किशोर ने उस समय कुछ न कहा, किंतु उसके हृदय को बहुत गहरी चोट पहुँची । उसने अपने मन में यह ठान लिया, कि जब मैं रुपए कमाऊंगा, तभी ऊषा से मिलूंगा । घर पहुँचते ही उसने अपने पिता से देश भ्रमण का प्रस्ताव किया । स्नेहियों के हृदय में दुःख हुआ, माता-पिता का हृदय फट गया, ऊषा का हृदय टुकड़े-टुकड़े हो गया, किंतु किशोर ने एक न सुनीं । उसके माथे पर एक ही धुन सवार थी । उसने कलकत्ते का टिकट लिया और अहमदाबाद छोड़कर चला गया ।

कलकत्ते जाते ही वह जूट और कोयले के रोज़गार की ओर झुका । धीरे-धीरे वह उसमें माथा लड़ाने लगा । शेयर बाज़ार में जाकर वहाँ का मतलब समझने लगा । विधाता के खेल भी न्यारे होते हैं, जैसे मनुष्यों के चेहरे में कुछ-न-कुछ अलगाव होता है, वैसे ही मनुष्य के स्वभाव में भी अलगाव होता है । रुपए कमाने की इच्छा प्रत्येक मनुष्य को होती है, किंतु इस इच्छा में भी अलगाव होता है । कोई अपना जरूरी खर्च निकालने लायक़ रुपए कमाकर ही संतुष्ट होता है, किसी की महती इच्छा उसे हद से ज्यादा ऊपर खींच ले जाती है । कोई धीरे-धीरे नाम पैदा करने के साथ-साथ कुछ रुपए कमाने का प्रयत्न करते हैं, कितने ही एक बारगी अमीर हो जाने की चेष्टा करते हैं । किंतु जब तक मनुष्य की क़िस्मत सहायता न करे, कोई सहायक न मिले, ज़मीन या खानों से रुपए न मिलें

अथवा सट्टे में पैदा न करे, मतलब यह, कि जब तक हथफेरी न करे, तब तक कोई चट-पट अमीर हो नहीं सकता। किशोर की महत्वकांक्षा और अपनी कमाई से ऊषा का शृंगार करने कीं इच्छा इतनी प्रबल हो गई थी, कि जैसे बने वैसे वह लाखों रुपए कमा ले। कलकत्ते में उसने बाबू युगलकिशोर के नाम से शेयर का व्यापार करना आरंभ किया। पहले नसीब चटका, पाँच-छः महीने तक खूब नफ़ा मिला; लेकिन बाद को किस्मत ने पलटा खाया। एक ही दिन के सट्टे में सारी कमाई खप गई, ऊपर से क़र्ज़ भी हो गया। किशोर को कुछ सुझाई न दिया, कि क्या करें। शेयर का दलाल आकर महाजन के रुपए के लिये तक़ाजा करने लगा। सीधे सादे किशोर ने दलाल को समझा दिया, कि उसके पास कुछ नहीं है, जो रकम चढ़ गई है, उसे वह धीरे-धीरे भरपाई कर देगा। दलाल क्या करता? उसने मिलने का एक दिन स्थिर कर दिया। अस्सी हज़ार किशोर के नाम चढ़ गया। शेयर का दलाल एक बंगाली था, यह हृदय का दयालु था। जब वह समझ गया, कि किशोर पर चाहे कितना ही दबाव क्यों न डाला जाय, वह एक पाई भी नहीं भर सकता, तब उसने किशोर से कहा—जब आपके पास रुपए आवें, मुझे बुलाकर दे दीजियेगा। मैं न तो आपके पास तक़ा आऊंगा ओह न मुझे आपके दस्तख़त की ही ज़रूरत है। माता काली का ध्यान करके, जब रुपए आवे तभी दे दीजिएगा।"

शेयर के दलाल की बातों से किशोर के मन में बहुत चिंता समा गई। उसके मन में यह ख़याल चकराने लगा, कि रुपए कहाँ से देंगे? थोड़ा भी नहीं, अस्सी हज़ार रुपए! आख़िर वह

कलकत्ता छोड़ चुपचाप रंगून भाग गया। वहाँ जाकर चावल के रोजगार में माथा खपाने लगा। वहाँ सबसे बड़ी एक देशी आढ़त में जाकर किशोर आढ़त के मालिक से मिला। इसकी विद्वत्ता और बुद्धिमानी देख, बहुत खुश होकर आढ़त के मालिक ने अपने दलाल के रूप में बेचने और खरीदने का काम उसे सौंप दिया। इससे और भी आढ़तों के काम इसे मिलने लगे। थोड़े हीं दिनों में उसे अच्छी आमदनी होने लगी। जैसे-जैसे उसे नफ़ा होता गया, वैसे-वैसे वह कलकत्ते के शेयर-दलाल के नाम रुपए भेज, कर्ज भरता गया। एक साल के भीतर उसने चालीस हज़ार रुपए भर दिए। इससे उस दलाल ने उसकी ईमानदारी पर खुश होकर बाकी रकम छोड़ने की खबर भेज दी! इस तरह किशोर ने कर्ज़ से छुटकारा पाया। चावल की दलाली के लिये वह 'दि इंडियन ट्रांसपोर्ट स्टीमशिप कंपनी' के एजेंट के पास गाया। यह कंपनी रंगून के चावल लाद कर शिंगापुर, कलकत्ता, मद्रास तथा कोलंबो लेजाने का काम करती थी। कंपनी का एजेंट बहुत ही मधुर-भाषी और चालाक आदमी था। किशोर के हाथ में बड़ी-बड़ी आढ़तें देखकर उसने उसे स्टीमर के फ्रेट का ब्रोकरेज और चार्टर होने के लिये लालच दी। रुपए कमाने की अत्यंत आतुरता के कारण किशोर भी लालच में आ गया। इस तरह धीरे-धीरे उसकी तबीयत चावल की दलाली से हटने लगी। वह फ्रेट-ब्रोकरेज़ करने लगा और उसके समस्त स्टीमरों के चार्टर की लालच में पड़ गया। उसने एक वर्ष के लिये उस कंपनी के तमाम स्टीमरों का चार्टर ले लिया। किंतु इस बीच में उसने हाथ की तमाम आढ़तों को खो दिया। इसलिये अन्यान्य कंपनी वालों

न अपना रेट घटा दिया। अन्यान्य दलालों को यह कंपनियाँ कमीशन बढ़ाकर देने लगीं। इससे किशोर के स्टीमरों को काम मिलने में कठिनाई पड़ी। कभी-कभी तो खाली स्टीमर आने-जाने लगा। किशोर को नुक़सान पहुँचने लगा। एजेंट ने अपना मतलब साधा। एक समय था, जब जहाज़ का साहब किशोर के आगे मीठी-मीठी बातें कर उसे खुश रखने का प्रयत्न करता था। परंतु मतलबी साहब ने अब उसपर दबाव डालना प्रारंभ कर दिया। किशोर के डिपाज़िट के रुपयों को ज़प्त कर बाक़ी के लिये उसने उसे दबाया। किशोर के लिये कोई राह न रह गई। जैसे-तैसे उसने नुक़सानी कहकर साहब से छुटकारा पाया। किंतु अब रंगून में रहना किशोर के लिये बहुत ही कठिन हो गया। जहाँ जाता, वहाँ ही लोग उँगली उठा-उठाकर उसकी बातें करने लगते थे। जिस आढ़त के मालिक ने पहले इसको मदद दी थी, उसने फिर उसे बुलाकर समझाया, उसने फिर उसे दलाली करने की सलाह दी। किशोर अपने डेरे में आया, लेकिन उसे धीरज न हुआ। उसका मन रंगून से उचट गया। उसने रंगून छोड़ने का विचार कर लिया। रंगून छोड़कर वह मद्रास चला आया।

मद्रास में आकर वह सूत और चीनी की दलाली करने लगा। धीरे-धीरे उसे इसमें भी फ़ायदा हो जाता था। महीने में दो-तीन सौ रुपए का फ़ायदा हो जाता था। उसे ऐसा मालूम होने लगा, कि दुनियाँ स्वार्थी है। पास में रुपए हों, तो बड़ी इज्ज़त मिले; रुपया न हो, तो विद्या और सद्गुणों की भी क़द्र नहीं। इस तरह अपने साथ बातचीत करनेवाले प्रत्येक मनुष्य

को वह स्वार्थी समझने लगा। स्नेह और प्रेम उसके लिये दुनियाँ में कोई चीज़ ही न रही। उसके मन में यह विचार बैठ गया कि रुपए में ही सारा स्नेह और प्रेम है। उसने यह निश्चय किया, कि जब सुख-संपत्ति को छोड़ बाहर निकले और रुपयों का अभाव ही रहा, तो अब रुपए ही चाहिए। इससे उसके मन का प्रेम धीरे-धीरे घटने लगा। इसी समय उसके एक मित्र द्वारा उसकी गुलशन से मुलाक़ात हो गई। गुलशन ने अपने प्रेम से उसके हृदय को छीन दिया। इसी बीच में उसने सूत का सट्टा किया। सट्टे का काम ऐसा है, कि एकबार मनुष्य उसमें फँसा, तो फिर निकल नहीं सकता। उसमें भी आख़िर को नुक़सान आया। इसलिये उसने गुलशन से संबंध छोड़ने का विचार किया। किंतु गुलशन एक न मानी। आख़िर उस स्थिति में गुलशन को वह हृदय से चाहने लगा। जैसे-तैसे अपना और गुलशन का ख़र्च चलाने लगा। किंतु ऐसे कब तक चलता? गुलशन अपने जवाहिरात बेचने लगी। नतीजा यह हुआ कि दोनों को दो दिन के फाके पड़ गए। अब किशोर—गुलशन का ज्योतिःप्रकाश घबड़ाया और रुपए कमाकर गुलशन के पास वापस लौटने का उसने प्रण किया। मद्रास छोड़कर वह अहमदाबाद चला आया। किंतु अपने को लोगों से छिपाकर यहाँ पर अरुण के नाम से मशहूर हुआ।

संसार का नीचा-ऊंचा देखने के बाद उसका हृदय बदल गया। उसके मन में यह विचार दृढ़ होकर बैठ गया कि अपना विवाह ही न करना, और केवल सेवा ही करना चाहिए, संसार में सुख नहीं है, केवल पराए को सुखी बनाने में ही सुख है।

इसलिये उसने देश में चलते हुए स्वदेशी आंदोलन की ओर ध्यान दिया। अच्छी तरह विचार करने के बाद उसे जो भला जान पड़ा, वही करने लगा। उसने अपना पहले का विचार छोड़ फिर से नया जीवन आरंभ किया।

पंद्रहवाँ परिच्छेद

—:०००:—

महाजन और मज़दूर

बिना ग़रीबों के अमीरों का अस्तित्व कुछ नहीं है।

अरुण ठीक किए हुए समय पर हरबम से मिला। वे दोनों मिलकर बोझा ढोनेवाले मज़दूर के निवासस्थान की ओर चले। रात के नौ बजने का समय था। इस समय विनोद भी साथ था। मज़दूरों का एक दल बैठा, इन लोगों की राह देख रहा था। इन तीनों आदमियों के पहुँचते ही उस दल में शांति छा गई। अरुण ने उस दल में-से चालाक़ और बुद्धिमान मनुष्यों के चुनाव की इच्छा प्रकट की। करीब पंद्रह आदमियों का चुनाव होने के बाद अरुण ने कहना आरंभ किया:—

"क्या यहाँ इकट्ठे होनेवाले सब भाई इन पंद्रह आदमियों और अपने मुखिया हरबम का विश्वास करते हैं?"

विश्वास के लिये वचन मिलने पर अरुण ने फिर कहा:—

"तुम्हारे सुख के लिये हमलोग जो करेंगे, वह तुम्हें मंजूर होगा?।"

सब एक साथ बोल उठे—"मंजूर है।"

तब अरुण ने हरबम की तरफ़ पलटकर कहा—"हरबम! अब इन लोगों को जाने दो। इन पंद्रह आदमियों के साथ तुम यहाँ रह जाओ।"

हरबम ने उस दल को ऐसी ही आज्ञा दी। बाकी अट्ठारह आदमी गुप्त मंत्रणा करने को वहाँ ठहर गए। अरुण ने अपने पास से एक कागज़ निकालकर विनोद के हाथ से पढ़ने को दिया। हरबम लालटेन ले आया, बिनोद ने आरंभ किया:—

"पहले तुम लोग पता लगाकर तमाम मज़दूरों को इकट्ठा करो। इसके बाद सभासद् की तरह उन सबके नाम लिख लो। तुम लोग प्रत्येक जगह की मज़दूरी तय करो और ठेलागाड़ी में लदनेवाले बोझों की तौल ठहराओ; तुम्हारे दल का कोई आदमी इन मज़दूरी और बोझ के नियमों को न तोड़े। रोज़ सबेरे सात बजे से शाम के पाँच बजे तक काम-काज करना चाहिए। बारह साल से कम उम्र के लड़के को काम पर न ले जाना चाहिए। लेकिन उसके पढ़ाने का बंदोबस्त जरूर करना चाहिए। इसके लिये आरंभ में हर एक लड़के को किसी एक ही गुरुजी के पास जाकर पढ़ना चाहिए। हर एक सभासद् से महीने में एक पैसा वसूल किया जावे; जिसमें गुरुजी के लिये तनख्वाह का ठिकाना हो और तुमपर भी खर्च का बोझ न पड़े। पाँच बजे के बाद घर आने पर घर में सफ़ाई और तंदुरुस्ती के नियमों के मुताबिक़ काम करो। तुम लोग अपनी तंदुरुस्ती बनाना, एक-दूसरे के दुःख-सुख में मददगार बनकर मदद करना। हर शुक्रवार या गुरुवार को आधे दिन काम बंद करके ईश्वर के भजन में लीन रहना, घर

की जो औरतें और बालक काम करने या पढ़ने न जाते हों, उन्हें सूत कातना और कपड़ा बुनना सिखाना चाहिए। तुममें जो समझदार हों, उन्हें फ़ुरसत के वक़्त और कोई कारीगरी का काम सीखना चाहिए। इसके बाद क्या करना है, वह फिर बताया जावेगा।"

सबने ही इन नियमों को मंज़ूर कर इन्हीं के अनुसार चलने का वादा किया। अरुण और विनोद वहाँ से जाने को ही थे कि इसी समय हाँफता हुआ प्रताप आकर खड़ा हो गया।

अरुण ने पूछा—"क्यों प्रताप! आज इस समय?"

प्रताप ने कहा—"महाशय! आज मिलिओनर मिल्स में बहुत गड़बड़ मची है; सब मज़दूर उत्तेजित हो उठे हैं; झगड़ा हो जाने का भय है। वहाँ आपकी सलाह की ज़रूरत है।"

अरुण ने पूछा—"मामला क्या है?"

प्रताप—"आज एक जुलाहा ज़रा देर में आया था। वीविंग-मास्टर ने उसे अपने आफ़िस में खूब गालियाँ दीं और मारा। जुलाहा कुछ न बोल, अपने काम पर जा बैठा। लेकिन उसके साथ काम करनेवाले उत्तेजित हो उठे। वे सब मिल के मैनेजर के पास फ़रियाद लेकर गए; लेकिन मैनेजर ने उन्हें आफ़िस में दाखिल न होने दिया। दोपहर बाद वीवींग-मास्टर टहलता हुआ जुलाहों के कारख़ाने में आया। वहाँ उसने मैनेजर के पास फ़रियाद लेकर जाने की बात पर सबको गाली दी और उस जुलाहे को कई धक्के मारे, जिससे उसकी उँगली मशीन में दबकर कट गई। इसपर सबने उत्तेजित होकर वीविंग-मास्टर को अपने कारख़ाने के कमरे से निकल जाने को कहा। वीविंग-मास्टर सबसे गाली-

गलौज करने लगा; लोग बहुत उत्तेजित हो उठे; मार-पीट भी हो गई। वीविंग-मास्टर रिवालवर लेकर खड़ा हो गया। सब लोग दूर हट गए। कोई भी काम नहीं करते। सबके सब मिलकर वीविंग-मास्टर और मैनेजर को मारने के लिये बाहर बैठे हैं। मैनेजर ने पुलिस से मदद माँगी है। मामला यहाँ तक बढ़ गया है।"

बातें सुनते-सुनते प्रताप, अरुण और विनोद मुखिया-जुलाहे के मकान के सामने पहुँच गए। वहाँ करीब पचास आदमी इकट्ठे थे। इन तीनों के पहुँचते ही वहाँ एक प्रकार की हलचल मच गई। आवाज़ें आने लगी—"बस, जैसे को तैसा!"—"कल सालों को ज़रूर मारूँगा!"—"इसकी मिल ही तोड़ देना चाहिए।" मुखिया जुलाहा अरुण के आगे आया और प्रताप के दिए हुए समाचार को फिर से सुना गया। अरुण ने धीरज देते हुए कहा:-

"भाइयो! उत्तेजित न हो। शांत हो। जो काम करो, ऐसा करो, जिसका नतीजा अच्छा हो। तुम लोग मार-पीट करोगे, तो मामला अदालत तक पहुँचेगा; इससे क्या फ़ायदा? देखो, सुनो; कल रविवार है; कल तुम लोग सबेरे अन्य मिलों के मजदूरों से मिलो और उनसे अपनी सारी कहानी कहो। इसके बाद तुम लोग मिलकर एक कारीगर-मंडल स्थापित करो। उसमें अपनी सलाह ठीककर मिल के एजेंट के पास निवेदन-पत्र भेजो कि अगर इस तरह कारीगरों से अन्याय का बर्ताव किया जायगा, तो कारीगर लोग काम छोड़कर हड़ताल करेंगे। जैसे हो, इन सब कुरीतियों को निकाल देना चाहिए। इस निवेदन-पत्र का जवाब जब तक न आए, तब तक काम पर न

जाना चाहिए। इस बीच में हड़ताल भी बहुत शांति और मिलजुलकर सलाह-मशविरा करने के साथ होनी चाहिए। अपने भाइयों को अपना हक़ समझा दो और घर के सामने सूत की कताई आरंभ रखना चाहिए। इससे तुम लोगों को हमेशा लाभ होता रहेगा। किंतु इतना याद रखना, कि इस हड़ताल रूपी हथियार को न्याय के मार्ग से ही चलाना उचित है। अन्याय के साथ या बेक़ायदे इसका उपयोग न करना चाहिए। अगर तुम लोग न्याय से हड़ताल करोगे, और मिलवाले तुम लोगों के साथ समझौता न करेंगे, तो तुम लोगों पर सहानुभूति दिखानेवालों की संख्या बढ़ जाएगी और वे लोग तुम्हें काम में लगाने या खर्च के लिये तुम्हें मदद देने से मुँह न फेरेंगे। यदि तुम लोग अन्यायपूर्वक हड़ताल करोगे, तो कोई भी तुम पर सहानुभूति न दिखाएगा और तब तुम लोग अन्यायी और उच्छृंखल समझे जाओगे। इसलिये मेरी सलाह मानते हो, तो ऐसा ही करो।"

एक मज़दूर बोल उठा—"यह सब तो ठीक है। किंतु हड़ताल करने से तो हम लोग ही भूखे मरेंगे; इससे मिल के एजेंटों का क्या नुक़सान होगा?"

"भाइयो! देखने में तो उन लोगों का कोई नुक़सान नहीं है। किंतु विचार करके देखो, तो जान पड़ेगा, कि उनका कितना नुक़सान है। तुम लोगों को तो केवल दो दिन की मज़दूरी की चिंता है; इसलिये यदि रुपया नहीं, तो आठ आने तो तुम लोग दूसरा काम करके भी कमा सकते हो; सिर्फ़ दस-पाँच दिन की तक़लीफ़ हो सकती है। इससे तुम लोगों के घर का कोई नुक़सान

नहीं हो सकता । मिलवालों के नुक़सान का तो कोई ठिकाना ही नहीं—रोज़ तैयार होनेवाले हज़ारों रुपए के माल, मकान का किराया, आफ़िसवालों की तनख़्वाह, उसपर उनके नक़द रुपयों का सूद । वह सब कब तक इतना नुक़सान सह सकते हैं ? अगर तुम लोगों को यह भय हो, कि दूसरे मिलवाले जाकर काम करेंगे, तो तुम सब मिलवाले आपस में सलाह कर लो । जब तुम सब लोग एक हो जाओगे, तब वे लोग तुम्हारा क्या कर सकते हैं ? भाइयो ! तुम्हारी मेहनत से वे लोग लाखों रुपए पैदा करते हैं । तुम्हारे भरोसे कारख़ाना चलता और वे लोग मोटरें दौड़ाते हैं । अगर उनके कारख़ाने में तुम लोग काम न करो, तो उनका कारख़ाना टूट जावे और उनका सारा ऐशो-आराम हवा हो जावेगा । हर एक कारख़ाने में महाजन और मज़दूरों की ज़रूरत है । महाजन बिना मज़दूर के और मज़दूर बिना महाजन के कुछ नहीं कर सकते । इनकी स्थिति गाड़ी के दो पहियों के समान है । इन लोगों को चाहिए कि आपस में मिल-जुल कर रहें । तुम्हें उनका हित और उन्हें तुम्हारा हित देखना चाहिए । इसलिये तुम लोग धैर्य के साथ पूरी तरह से विचार द्वारा निश्चय कर कोई काम करो ।"

कुछ देर बाद सब लोग अपने-अपने घर चले गए । दूसरे दिन सबेरे से ही धूम पड़ गई साबरमती के किनारे की रेती में मिल के और अन्यान्य मज़दूरों की एक बहुत बड़ी सभा बैठी । संध्या के चार बजे का समय था । समस्त मज़दूरों की मंडली इकट्ठी हुई थी । अरुण की सलाह के अनुसार विख्यात बैरिष्टर मि० हीरालाल पटेल को सबने अपना सलाहकार और

सभापति मान उस दिन का काम आरंभ किया था। 'महाजन और मज़दूर' के विषय पर मज़दूर-मंडल स्थापित होने वाला था। एकाएक इस हलचल के उपस्थित होने पर शहर के अन्यान्य रईस और मिल के एजेंट भी सभा की कार्रवाई देखने आए थे। सेठ माधवलाल, मदनराय तथा ऊषा भी वहाँ मौजूद थे। अरुण के साथ विनोद, जगन्नाथ तथा अन्यान्य स्वयं-सेवकगण उत्साह के साथ वहाँ की व्यवस्था करते हुए सभा का काम कर रहे थे। प्रतप और हरबम तो वहाँ थे ही, क्योंकि इस सभा में मज़दूर और कारीगर दोनों ही थे, सिर्फ़ महाजन अर्थात मिल स्थापित करनेवाले लोग न थे। साढ़े चार बजते-बजते हजारों आदमी इकट्ठे हो गए। अख़बारों के रिपोर्टर भी जमा हो गए। कहीं-कहीं खुफ़िया पुलिस के रिपोर्टर भी छिपकर बैठ गए। सभा का कार्य आरंभ हुआ, सभापति का चुनाव इत्यादि हो जाने पर अरुण ने उठकर अपना व्याख्यान शुरू किया।

"श्रीमान् सभापति महाशय तथा अन्यान्य सहायक गण और मेरे कारीगर मज़दूर भाइयो! आज की सभा एकत्र करने तथा इसकी आवश्यकता के बारे में दो शब्द कहने के लिये श्रीमान् सभापति महाशय ने मुझे आज्ञा दी है। मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कुछ कहना चाहता हूँ, यदि इसमें कोई भूल हो, तो आप लोग उदारता के साथ क्षमा करेंगे।

"पहले हम लोगों को यह समझना चाहिए, कि ग़रीब और अमीर अर्थात् मज़दूर और महाजन का क्या संबंध है। संसार की आरंभिक स्थिति की कल्पना की जावे, तो हम लोग यह कल्पना कर सकते हैं, कि मनुष्य चाहे जिस स्थिति में रहा हो,

और चाहे जहाँ हो, लेकिन उनमें व्यवस्था की-सी कोई चीज़ नहीं थी। जब बलवान निर्बलों को सताने लगे या जंगली जानवर मनुष्यों को भय दिखाने लगे, तब वे लोग एक साथ मिलकर रहने लगे और तभी से उन लोगों ने अपनी रक्षा के लिये कुछ नियम बनाए। इनमें कुछ शारीरिक बल में, कितने ही मानसिक बल में, कितने ही खेती-बारी में और कितने ही लोग कला-कौशल में कुशल होकर एक-दूसरे की सहायता करने की योजना करने लगे। उनमें जिसमें जो गुण होता, उसका लाभ वह दूसरों को पहुँचाता और दूसरे लोग उसकी ज़रूरतें पूरी किया करते थे। विचार करने से समझ में आता है, कि ऐसे ही इसका व्यवहार दिन प्रति दिन बढ़ा। उदाहरण के रूप—राजपूत लोग गुरु के यहाँ जाकर विद्या पढ़ते और उसके बदले वे गुरु-दक्षिणा के रूप में गुरू की इच्छा पूरी करते थे। ब्राह्मण लोग वेद पढ़ते-पढ़ाते, अस्त्र-शस्त्र चलाना सिखाते तथा राजकीय विषयों में सलाह देते थे। इस प्रकार क्षत्री गो. ब्राह्मण का प्रतिपालन करते और उनकी आज्ञा मानते थे। खेतिहर खेत जोतते और बोते थे, इसके बदले में समाज की रक्षा क्षत्री करते थे। किसी लोभी मनुष्य के मन में लोगों की मदद ओछी जान पड़ी, तो उसने पहले से ही ठहराव करने का बंदोबस्त किया। पहले किसी सेठ के यहाँ कोई नौकरी करता, तो जन्मभर के लिये नौकर होता था। मालिक उसका पालन करते हुए, उसके घर का सारा ख़र्च उठा लेते थे। इसमें अब मालिकों ने लोभ दिखाना आरंभ किया, तब नौकरों ने भी समय का नियम बना दिया। इस तरह एक-दूसरे की मदद करना भूलने से ही आज-कल की यह नौकरी की प्रथा चली है। आज-कल

का नियम है, कि इतने बजे से इतने बजे तक नौकरी करना और पहले से निश्चय किया हुआ काम करना। इसके बदले ठीक की हुई तनख़ाह लेना। समय से अधिक काम करने से अधिक पैसा मिलता है। ग़ैर हाज़िर होने से तनख़ाह कटने का कायदा है। नौकरी की वर्त्तमान स्थिति कैसी है, उसे आप लोग समझ गए। अब महाजन और मज़दूर तथा मालिक और नौकर परस्पर एक-दूसरे के बिना कैसे अपना काम चला सकते हैं; इसे समझना चाहिए।

समाज की उन्नति व्यापार और कला-कौशल की उन्नति के ऊपर निर्भर है। हर एक काम में रुपए और मेहनत की ज़रूरत पड़ती है। जिस प्रकार बिना दो पंख के चिड़िया भी नहीं उड़ सकती, उसी प्रकार बिना इन दोनों के कुछ नहीं हो सकता। महाजन रुपए कैसे कमाते हैं? बड़े-बड़े कारख़ानों का काम कैसे चलता है? अकेले रुपया या बुद्धि कुछ कर नहीं सकती। उसके साथ रुपए की भी ज़रूरत पड़ती है। वैसे ही अकेली मेहनत भी बिना रुपए और और बुद्धि के निकम्मी है। महाजन मज़दूर से नाराज़ हो जाय और मज़दूर महाजन से नाराज़ होजाय, तो किसी का भी काम न चले। इसलिये महाजन तथा मज़दूर-दोनों को ही हृदय से मिलकर चलना चाहिए। साथ ही यह याद रखना चाहिए, कि जिन दो पंखों से चिड़िया उड़ती है, उनमें एक पंख भी अगर कुछ कमज़ोर पड़ेगा, तो उनका उद्धार नहीं हो सकता। वैसे ही समाज की उन्नति के इन दोनों अंगों में एक अंग भी बलहीन हो, तो इससे समाज की अधोगति समझना चाहिए। हमारे महाजन और मज़दूर-दोनों ही यह नहीं समझते, कि

समाजोद्धार में इन दोनों का हिस्सा कितने महत्व का है। इन दोनों की समझ उलटी है। महाजन समझते हैं, कि हमें संसार में किसी की परवाह नहीं, हम खुद बलवान हैं, तो जैसे चाहें, अपने बल को बढ़ा सकते हैं। क्योंकि रुपया रुपए को कमाता है। इसलिये जैसे बने काम लेना चाहिए। किंतु उन्हें यह सहज बात नहीं सूझती, कि नियमानुसार माता का दूध पिया जावे, तब तो अच्छा है, लेकिन अगर हद से ज्यादा चूसा जावेगा, तो दूध के बदले खून आता है और इससे माता का शरीर कमज़ोर होकर पंचत्व को प्राप्त होता है। इसी तरह यदि मेहनत के अनुसार रुपए मिलें या नियमानुसार मेहनत हो, तो नतीजा उत्तम होता है; नहीं तो मेहनत करनेवाला मर जाता है, नष्ट हो जाता है और बिना खुराक के अधमरा हो जाता है; इसका परिणाम क्या है ? क्या इससे महाजन लोग अपना या समाज का कुछ भी भला कर सकते हैं ? महाजनों को चाहिए, कि जिसप्रकार बड़े-बड़े महाजनों के कारण समाज की उन्नति होती है; ठीक उसी प्रकार मेहनतवालों को भी आदर, आबोहवा और प्रकाश मिलना भी नितांत आवश्यक है। मज़दूरों को भी चाहिए कि वे स्वयं ऐसा पुरुषार्थ दिखावें, जिससे महाजन सुगंधित पुष्पों से परितृप्त रहें। समाज के यह दोनों अंग हिल-मिलकर परस्पर सहानुभूति के साथ रहेंगे, तो समाज का उद्धार सहज में हो सकता है। किंतु अपने यहाँ की हालत ही कुछ और है। मेहनत का कोई हक़ नहीं समझा जाता अथवा महाजन मज़दूरों को तुच्छ बनाना चाहते हैं। इसका परिणाम क्या होता है ? अमीर लोग प्रचुर धन कमाकर लक्ष्मीवान कहलाते हैं-

बड़े-बड़े कारख़ाने चलाकर लाखों रुपए पैदा करते हैं-धर्मार्थ फंडों में तथा सरकार को प्रसन्न करने के लिये तथा अन्य कामों में रुपए खर्च करते हैं-रायसाहब, रायबहादुर बनते और इज्ज़त पाते है; किंतु उन्हें यह ख़बर नहीं है कि इन ख़िताबों और इज्ज़तों की असली इज्ज़त किसकी है ? किसने अपने ख़ूनरूपी पानी, ईंट तथा चूनों से इज्ज़त पाने की इमारत को तैयार किया है ? क्या अमीरों ने यह रुपए अपने बल से पैदा किए हैं ? कोयले की ख़ानों में खचिया ढोने, लोहे की कुदालियों से सुरंग खोदने, रेलवे इंजिनों के पुरज़े बनाने, कुदालियों पर पानी चढ़ाने, स्टीमरों के तख़्ते जड़ने और रंदा मारने के लिये कितने महाजनों ने अपना हाथ लगाया है ? बताओ तो सही, कि मिल के एजेंटों और मालिकों में कितने लोग कार्डिंग, रेचिनिंग और वीवींग का काम करते हैं ? संसार का क़ायदा है, कि सच्चा काम करनेवालों की दाद कोई नहीं देता; किंतु ऊपरी दौड़ लगानेवाले महाजनों की लोग तारीफ़ करते हैं। अक्सर सुनने में आता है, कि अमुक महाजन ने इस साल व्यापार में अच्छा लाभ उठाया; किंतु उन महाजनों से कोई सच पूछे, कि उनके व्यापार की चाबी किसके हाथ में थी ? अमुक कप्तान ने अमुक शहर पर विजय पाई, किंतु उनसे कोई सच पूछे, कि उन्होंने कितने गोले-गोलियाँ चलाईं या उन्होंने क्या अपने बाहु-बल से विजय पाई है ? जिस काम को देखो, अंत में उसमें मेहनत ही दिखाई देती है। बिना मेहनत के कुछ भी नहीं। संसार में होनेवाले हरएक प्रसिद्ध विजयी योद्धाओं को देखो, तो दिखाई देगा कि उनका आधार, जीवन-प्राण उनकी सेना ही थी। वे

लोग अच्छी तरह से समझते थे और अपने और अपने सिपाहियों के बीच ज़रा भी भेद न रखते थे और उन्हें उत्साहित करते हुए अपने मित्र समझते थे।

किसी समय समस्त योरोप खंड पर विजय पानेवाले नेपोलियन ने क्या स्वयं अकेले ही विजय पाई थी? कभी नहीं; बल्कि उसके हरएक सिपाही बलवान नेपोलियन थे। उसकी समस्त सेना नेपोलियनों से भरीपुरी थी। इसलिये उन सबके खून से मिलनेवाली विजय-भ्रातृभाव होने के कारण एक मात्र नेपोलियन की विजय कही जाती है। महाराणा प्रताप, सांगा, रणजीतसिंह, शिवाजी—इन लोगों के बारे में भी कुछ ऐसा ही है। उनकी सेना में उनके ही जैसे प्रताप, सांगा, रणजीत और शिवाजी थे; उन्हीं लोगों से उनका बल बढ़ा हुआ था और वे विजयी हुए थे। अर्जुन-कर्ण आदि जैसे अकेले बाहु-बल से विजय प्राप्त करनेवाले बिरले ही होंगे। इसप्रकार जहाँ जाँच कर देखा जाएगा, वहीं दिखाई देगा, कि महाजन मजदूरों का खून चूसते हैं और उनके शरीर का बलिदान कराकर अपने भोग-विलास की पूर्ति करते हैं। इसका तो वे विचार ही नहीं करते कि जिसके बलिदान से उन्हें इतना सुख मिलता है, उसके नाश न होने का ख़याल रक्खें। अपने कारख़ाने के मज़दूरों का कितना रोज़ है, उन्हें कौन-कौन दुःख और असुविधाएँ हैं, उनकी कैसी हालत है—इन सब विषयों की ओर निगाह भी नहीं फेरी जाती। उन्हें यह समझाने की कोई जरूरत ही नहीं दिखाई पड़ती कि मज़दूरों के साथ कैसा बर्ताव किया जाता है। थोड़े से पैसों के लिये उनके साथ गुलाम से भी अधिक अधम बर्ताव किया जाता है। वे मार
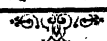
खाते हैं, गाली खाते हैं। बड़ी-बड़ी चालों के साथ धमकाए जाते हैं। ऐसे बर्ताव करनेवाले अफ़सर यह समझते हैं, कि वे तो अपने मालिक की भलाई करते हैं, किंतु उन्हें यह खबर नहीं होती कि इससे वे अपने मालिक की और समाज की कितनी बड़ी बुराई करते हैं! समूचे देश को ग़रीबी में डालकर वे कितना पाप कमाते हैं! मज़दूरों की इस दशा पर महाजन ज़रा भी ध्यान नहीं दे रहे हैं। वे समझते हैं, कि जो कुछ हो रहा है, वह बहुत अच्छा होता है; चलने दो; किंतु इससे मज़दूरों की हालत दिन-प्रतिदिन गिरती चली जा रही है। इसलिये मज़दूरों को स्वयं अपनी हालत पर विचार कर, उसे सुधारने और महाजनों की आँख खोलने की ज़रूरत है। इसीलिये आज यह सभा की गई है। मज़दूरों की ओर से मेरे पास जो अपील की गई है, उसे मैं आपके सामने पेश करता हुआ और उसपर आपकी सहानुभूति चाहता हूँ।

शहर अहमदाबाद की इस मज़दूरों की सभा में महाजनों की ओर से मज़दूरों पर जो-जो अमानुषिक अत्याचार होते हैं, वह प्रकट किए जाने लगे। यह प्रस्ताव हुआ, कि इस शहर के समस्त मज़दूरों का एक मंडल स्थापित हो, उसके सभापति के रूप में आज की सभा के ही सभापति महाशय कार्य करें। हर धंधे के मजदूर, आपस में एक मुखिया चुनकर अपनी-अपनी एक समिति बनाएँ; जिसके सदस्यों की संख्या पचीस से अधिक न हो। मज़दूरों को जिस बात की अड़चन, दुःख या कठिनाई हो, वे अपनी समिति के मुखिया से कहें और उसके बताए तरीके के अनुसार महाजनों से शांतिमय असहयोग करें।

उपरोक्त प्रस्ताव पेशकर अरुण अपनी कुर्सी पर बैठ गया।

श्रोताओं की दृष्टि अरुण की ओर पलटी; वक्ता कौन था? क्या करता है? कहाँ रहता है? आदि प्रश्न उस सभा में एक-दूसरे से पूछने लगे। क्योंकि इस सभा में मज़दूरों के अतिरिक्त महाजन लोग भी 'हाल चाल' देखने के लिये उपस्थित हुए थे। उन्हें अरुण का पता न लग रहा था। इसी समय जगन्नाथ ने उठकर प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कहा:—

"मेरे पहले के वक्ता महाशय ने हृदयग्राही भाषा में जो विचार प्रकट किए हैं, उसकी पूर्त्ति करने को नहीं खड़ा हुआ हूँ। इसमें मुझे कुछ भी कहना नहीं है। मैं जो कुछ कहूँगा, उसमें सिर्फ़ उनके प्रस्ताव का समर्थन ही करूंगा। इस सभा का यही उद्देश्य है, कि महाजन और मज़दूर—दोनों ही सच्चे प्रेम के बंधनमें बँधें, महाजन मज़दूरों को सम्मान की दृष्टि से देखते हुए उनके हित का ध्यान देवें और मज़दूर महाजनों की भलाई का ध्यान रक्खें। श्रीमान् मेहताजी को शांतिमय असहयोग का उपयोग करना है; बंदरों के हाथ तलवार नहीं देना है। महाजनों से हमारा नम्र निवेदन है, कि इस प्रस्ताव के कारण वे लोग हमको अपना विरोधी न समझें। साथ ही यह भी न समझें कि उनके विरुद्ध कोई पक्ष खड़ा हुआ है। क्योंकि यह मंडल और इसके प्रस्ताव तो साधन का एक स्वरूप है। संसार में बिना भय के प्रीति, बिना प्रीति के भय नहीं होता। शायद किसी को हमारी बातें खटकें, पर हमें यह प्रकट करना ही चाहिए, कि भय और प्रीति हमारे ख्याल से एक साथ की चीज़ है। प्रीति छूट जाने के भय से ही दोनों एक—दूसरे के प्रीति-पात्र बनते हैं। और इस भय के कारण ही प्रीति के बंधन को दृढ़ बनाने का प्रयत्न किया जाता

है। इसप्रकार महाजन की ओर मजदूर और मज़दूरों की ओर महाजन को प्रीति बनाए रखने के लिये ही यह उद्योग किया जा रहा है। यह अवश्य है कि इस प्रीति को हृदय की प्रीति नहीं कह सकते। क्योंकि हृदय की प्रीति में ऐसे कामों की ज़रूरत नहीं पड़ती। जो पक्ष न्याय के साथ अपने कर्तव्य को न समझे, उसे अपने कर्त्तव्य को समझाने के लिये इस मार्ग का अवलंबन करना पड़ता है।"

इसके बाद सभापति ने इस प्रस्ताव के प्रचार का बंदोबस्त किया और इसे समाचारपत्रों में प्रकट करने की सलाह दी।

सोलहवाँ परिच्छेद

शीघ्र ही अरुण प्रकट होगा

मज़दूरों की सभा के परिणाम से महाजनों की बुद्धि बहुत कुछ ठिकाने आगई। धीरे-धीरे वे लोग मज़दूरों की प्रार्थना और तकलीफ़ों पर ध्यान देने लगे। इधर म्युनिसिपैलिटी के चुनाव के लिये अरुण के साथ अन्यान्य पंद्रह स्वयंसेवक तथा ऊषा, जगन्नाथ की पत्नी कांता, दया तथा गुलशन भी काम में प्रवृत्त हुईं। प्रधान कार्यकर्त्ताओं में अरुण, विनोद, जगन्नाथ, रणछोड़ तथा उपरोक्त स्त्रियों को मिलाकर कुल आठ आदमी थे। म्यूनिसिपल चुनाव में वोटरों की आँख खोलना और प्रतिनिधियों की चलती हुई अंधाधुंधी को दूर करना ही इनका उद्देश्य था। इस काम में ऊषा के भाग लेने से सेठ माधवलाल का मिजाज चढ़

गया। उन्होंने एक बार ऊषा को समझाने की चेष्टा की। मदनराय ने यह बात उठाई।

मदनराय ने सेठ माधवलाल के सामने ही पूछा—" बेटी ! आज-कल तुम सारे दिन बाहर ही रहा करती हो। तुमने ऐसा कौनसा काम हाथ में लिया है, जिससे तुम्हें ज़रा भी फ़ुरसत नहीं मिल रही है। तुम्हारी माँ ने भी मुझसे कई बार यह बात पूछी थी।"

ऊषा ने साधारण तौरपर जवाब दिया—" पिताजी ! ईश्वर ने मनुष्यों के सिर पर कर्त्तव्य का इतना बड़ा बोझ रख दिया है, कि चौबीस घंटे तो क्या, यदि जन्मभर वह अपने कर्त्तव्य में लगा रहे, तब भी बड़े भाग्य से वह अपना कर्तव्य पूरा कर सकता है। प्रभु ने जन्म दिया है; कुछ सुख, कुछ बुद्धि और कुछ ज्ञान भी दिया है; इसलिये अपने को ऐसा काम करना चाहिए, जिसमें इन सबका सदुपयोग हो सके।"

मदनराय—" सत्य है बेटी ! तुम्हारे इस विचार से मुझे बहुत संतोष हुआ है। किंतु समझ में नहीं आता है, कि तुमने किस काम को अपना कर्तव्य समझ लिया है ? मेरी समझ से तो संसार में पुरुष और स्त्रियों के कर्तव्य की राह अलग-अलग है। पुरुषों को पहले अपने कुटुंब, इसके बाद समाज और इसके भी अंत में देश की उन्नति करना चाहिए और सामाजिक और राजनैतिक आंदोलन में भाग लेना चाहिए। स्त्रियों का कर्तव्य सिर्फ कुटुंब को सँभालना और पति की सेवा करना है। यह बताओ, कि तुम्हारे आंदोलन और कर्तव्य की राह कैसी है ? "

ऊषा—"पिताजी ! आप जो कह रहे हैं, वही कर्त्तव्य की

राह है। किंतु, स्त्री और पुरुष का प्रभु ने ऐसा संबंध बनाया है, कि इनमें एक भी अपने कर्तव्य से विमुख हो, तो उसकी कमी दूसरे को पूरी करनी पड़ती है। आप मेरे पूज्य हैं। अगर कोई शब्द मुँह से निकल जाए, तो क्षमा कीजिएगा। किंतु मुझे ऐसा जान पड़ता है, कि आप अपने कर्त्तव्य से विमुख हो गए हैं। उसकी क्षति-पूर्ति के लिये मुझे आपका कर्त्तव्य करना पड़ता है। इसलिये आजकल में होनेवाले म्यूनिसिपल चुनाव के लिये मुझे वोटरों को यह समझाने जाना पड़ता है, जिसमें वे लोग योग्य उम्मेदवारों को अपना वोट दें।"

सेठ माधवलाल ने ताने के स्वर में ऊषा से कहा—"मैं जानता हूँ, कि तुम मेरे विरुद्ध वोटरों को समझा रही हो। यदि ऐसा ही है, तो ठीक है। मुझे दुःख होना चाहिए, तुम्हारे पिता के मेरे प्राइवेट सेक्रेटरी होने पर भी तुम मेरे ही विरुद्ध बर्ताव कर रही हो।"

ऊषा—"आप मेरे पूज्य हैं; मैं आपकी बालिका हूँ। इसलिये मैं आपके सामने कुछ कहने योग्य नहीं हूँ। किंतु मेरे पिता के सेक्रेटरी और नौकर होने के कारण जब आप मुझे कर्त्तव्य से विमुख होने की सलाह दे रहे हैं, तब मुझे लाचार होकर कहना पड़ता है, कि आप मेरे पिता को तनख़ाह देते हैं और उसके बदले उनसे काम लेते हैं। उन्होंने अपना दिमाग़, अपनी बुद्धि और अपनी कार्य-दक्षता आपके हाथ बेच दी है; अतः उसका बदला आप भी देते हैं। न कोई मुफ़्त पाता है और न कोई धर्मार्थ देता ही है। यह आपकी नौकरी करते हैं, आप उन्हें उनका हक देते हैं। इस तरह नौकर होने पर भी उनका कर्तव्य है, कि यदि आपके हाथ से

कोई अनुचित कार्य हो, तो वे उसे रोकें; आपके हाथ से किसी-का नुक़सान होता हो, तो वे आपको उस पाप से बचावें। किंतु वे आपके हित के लिये रात-दिन ऐसे गुथे हुए हैं कि उन्हें इन सब बातों पर विचार करने की फ़ुरसत ही नहीं मिलती। यही वजह है, कि उनका यह काम मुझे उठाना पड़ा है। आपने समाज के प्रतिनिधि के रूप में चुनाव के लिये नामज़दगी की हैं। लेकिन मुझे विश्वास है, कि आप समाज की मर्ज़ी से नहीं अपनी इच्छानुसार काम करेंगे। उसपर भी मैं आपके विरुद्ध काम करना नहीं चाहती, मेरा काम तो यह है कि मैं योग्य मनुष्य को प्रतिनिधि के रूप में चुनूं। अगर आप योग्यता के अनुसार प्रतिनिधित्व करना चाहें, तो अपना चुनाव कराएँ; इस चुनाव का मुख्य आधार समाज-सेवा है।"

सेठ माधवलाल—"बहुत ठीक! तुम्हारे आंदोलन से यह साबित हो रहा है, कि यह महाजनों के विरुद्ध है। तब मेरे भी विरुद्ध है या नहीं?"

ऊषा ने साफ़-साफ़ समझाते हुए कहा—"महाजनों में बहुतेरे धन-मद से मतवाले हैं, अगर आपमें भी वह मद मौजूद हो, तो अवश्य ही यह आंदोलन आपके विरुद्ध है। किंतु यदि आपके दिल में दया है, तो यह आंदोलन कितना ही जबर्दस्त क्यों न हो, यह आपको नुक़सान पहुँचाने के बदले फ़ायदा ही पहुँचाएगा। आप तो अपने ही लिये कह रहे हैं, यदि आज मेरे पिता ऐसा काम करें, तो मैं उनकी पुत्री होने पर भी उनके विरुद्ध काम करूंगी।"

सेठ माधवलाल ने अपने धन-मद का ज़ोर दिखाना आरंभ किया—"तुम जानती हो, कि तुम्हारे इस बर्ताव का परिणाम क्या होगा?"

"अहा–हा–हा–हा" ऊषा जोर से हँस पड़ी। इसके बाद उसने कहा–"जानती हूँ। आप मेरे पिता को अपनी नौकरी से बरखास्त कर देंगे और क्या करगे? मुझे इसकी ख़बर है। यदि सच पूछा जाय, तो महाजनों का यही दंभ तोड़ने के लिये हम लोगों का यह आंदोलन है। अगर कुछ अनुचित कहती होऊं, तो आप मुझे अपनी बालिका समझकर क्षमा कीजिएगा। क्योंकि इस समय मैं आत्मीय की तरह आपसे बातचीत कर रही हूँ। आप महाजन लोग ग़रीबों की कौनसी भलाई करते हैं? प्रतिनिधि के रूप में जाकर–'अमुक सड़क चौड़ी करना है, अमुक बाग़ को सुधारना है, अमुक सेठ का स्मारक बनवाकर उसमें मूर्ति बैठाना है–' इत्यादि काम करते हुए ग़रीब प्रजा के पैसों को पानी कर डालते हैं। किंतु ग़रीबों के रहने के लिये मकान, धर्मार्थ पाठशाला और दवाख़ाना या ग़रीबों के पेट भरने के लिये चलते हुए कारख़ानों में कोई भी ज़रा ध्यान नहीं देता है? अमुक सड़क में बहुत धूल उड़ती है और इससे बाबूसाहबों के घोड़े और मोटर को बहुत तकलीफ़ होती है; ऐसी सलाह कर उस रास्ते पर पत्थर के रोड़े या अलकतरे से रबड़ जैसी सड़क बनवाने में हज़ारों रुपए ख़र्च करते हैं, किंतु बदबूदार नल और मच्छरों से भरी हुई ग़रीबों की झोपड़ियों की तरफ़ कोई कभी ध्यान नहीं देता? शहर की शोभा के लिये हज़ारों रुपए का होम होता है, लेकिन शहर की शोभा के साथ ही ग़रीबों के लिये कभी कोई विचार क्या करता है? अब बताइए कि ग़रीब लोग आपको कैसा चाहते हैं? महाशय! केवल अपने ही सुख का विचार करना छोड़ दीजिए। वोट लेने के लिये जो हज़ारों

रुपए पानी की तरह बहाए जाते हैं, उन्हीं रुपयों को अगर ग़रीबों का आशीर्वाद लेने के लिये ख़र्च कीजिए; तो बिना माँगे और बिना कहे ही आपको वोट मिलें।"

मदनराय ने ऊषा को उत्तेजित होती हुई देखकर कहा—"बहुत हुआ, बेटी! शिक्षा देना अपना काम नहीं है।"

ऊषा—"पिताजी! यदि बड़े लोग भूल करें, तो उसका सुधार करना चाहिए। अगर बड़ों को बुरा जान पड़े, तो इसके लिये मैं लाचार हूँ।"

सेठ माधवलाल चुप रह गए। कितनी ही इधर-उधर की बात के बाद वे घर जाने के लिये उठे, और जाते-जाते उन्होंने ऊषा से कहा—"बेटी! ज़रा विचार करना, नहीं तो बाद को बात बढ़ जायगी।" इसके जवाब में ऊषा हँस पड़ी।

माधवलाल के जाने के बाद ऊषा ने मदनराय से कहा—"पिताजी; संसार में छोटे-बड़े सब अपनी-अपनी उन्नति चाहते हैं। ग़रीब सुखी होने और दो पैसे पाने की कोशिश करते हैं। लखपती करोड़पति बनने का दावा करते हैं। सरदार लोग राजा बनना चाहते हैं; राजा चक्रवर्ती बनना चाहते हैं। तब यह धन-मद से मतवाले किसलिये विरोध करते हैं? और इनका यह विरोध किस तरह सफल हो सकता है?"

मदनराय—"बेटी! तेरा विचार सचमुच स्तुति करने योग्य है। मैं तुझे मना नहीं कर सकता। अपने को क्या पड़ी है, जो इसमें माथापच्ची करें। अपने को कष्ट ही क्या है? पहले अपने को अपना ही देखना चाहिए।"

ऊषा ने इस प्रकार सामान्य नीति के वचन सुनते हुए कहा—

"जो खुद दुखी हो, तो उसे सुखी होने का प्रयत्न करना चाहिए; खुद सुखी हो, तो दूसरों को भी सुखी करने का प्रयत्न करना चाहिए।"

मदनराय—"बिलकुल सच कहती हो बेटी! लेकिन तुम क्या समझती हो, कि महाजन मज़दूरों को फ़ायदा उठाने देंगे? ये लोग एक तरफ़ से छोड़ दूसरे तरफ़ से उनका सत्यानाश करेंगे।" मदनराय ने यह कहते हुए मानो महाजनों के बर्ताव का उदाहरण सामने रक्खा।

ऊषा—"इसीलिये तो ग़रीबों ने अपनी एक अच्छी राह निकाल ली है। उन ग़रीबों से मिलकर तुम जो चाहो, कर सकते हो; तुम हज़ारों मन माल बेच सकते हो; उन्नति कर सकते हो; लेकिन तुम अगर शीशे की कोठरी में बंद करके उनपर दबाव डालोगे, तो वे सब उसी समय शीशे को तोड़कर बाहर निकाल आवेंगे। यों ग़रीबों को संताप देते हुए चाहे महाजन लोग अपने तन-मन और धन से मनमाना सुख लूट लें, किंतु उनके सुख-संतोष का विचार न करने से उनके सत्यानाश के बदले महाजनों का ही सत्यानाश होता है।"

मदनराय—"यह सही है! लेकिन अमीर लोग तो यह कहते हैं, कि ग़रीबों का जन्म ही अमीरों के सुख के लिये है। क्योंकि अमीरों के बूढ़े सुख से जीवन व्यतीत करते हैं और ग़रीबों के बूढ़ों का जीवन कठिन हो जाता है।"

ऊषा—"यह बिलकुल ग़लत है। ग़रीब ही धीरे-धीरे महाजन बनते जाते हैं और अमीर लोग अपनी गुज़र देखकर ही मौज उड़ा सकते हैं। ग़रीब न होते, तो अमीर अब तक कभी मिट गए
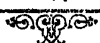
होते। पिताजी ! आज मैं आपसे तर्क कर, इसका विचार किया चाहती हूँ; यह मेरे लिये कुछ अनुचित-सा जान पड़ता है। क्योंकि आप मेरे पूज्य हैं, मैं आपकी संतान हूँ, इसलिये यदि, आपकी भी इच्छा हो, तो मैं आपके सामने अपने विचारों को खोलकर रख दूँ। यदि मेरी भूल हो, तो आप सुधार कीजिएगा। आज कई दिन से मैं आपके साथ इस विषय पर विचार करनेवाली थी; किंतु समय न मिलते देख चुप रही।"

मदनराय—"खुशी से कहो, बेटी ! तुम्हारे उत्तम विचारों से मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ।"

ऊषा—"पिताजी ! पहले प्राचीन समय को ही लीजिए; विदेशी इतिहासों को देखने से दिखाई देगा, कि सीज़र, अलिकज़ेंडर, नेपोलियन आदि कितने ही महान् पुरुष हो गए हैं। इससे हमें क्या शिक्षा मिलती है ? नेपोलियन मामूली सिपाही से शाहंशाह हो गया था। इस पदवी पर पहुँचाने के लिये उसमें साहस, धैर्य, आत्मबल, और दीर्घ-दर्शिता का प्राधान्य था। किंतु उसके समूचे योरोप पर विजय पाने में और भी कोई सहायता थी ? उसका नाम विजेताओं में था, किंतु उसके-जैसे असंख्य नेपोलियन उसकी सेना में थे। अवश्य ही कर्त्तव्य-परायणता में वह उन सबमें विशेष था। किंतु वह अन्यान्य असंख्य नेपोलियन जो उसकी सेना में भरती थे, यदि न होते, तो क्या होता ? यह असंख्य नेपोलियन कौन थे ? ग़रीब, पेट के लिये नौकरी करने वाले और अपना जीवन बेचनेवाले ही तो। ऐसे ही जीवन बेचनेवाले जीवों का सदुपयोग कर उनकी सहायता से नेपोलियन योरोप का विजेता बना। इसीप्रकार अपने महावीर राणा प्रताप और

शिवाजी का उदाहरण लीजिए। शिवाजी के साथ उनके ही जैसे हजारों शिवाजी थे। जंगल में रहनेवाले असंख्य शिवाजी के एकत्र बल से शिवाजी ने हिंदू-राज्य की स्थापना की। सोचिए, अगर शिवाजी ने उन सबकी ज़रूरत न समझी होती, या सहायता और संतोष के बदले उन सबका सत्यानाश कर दिया होता, तो अकेले शिवाजी क्या कर सकते थे? राष्ट्र के उद्धार के विषय में—चाहे राजकीय हो या आर्थिक, किंतु क्या आज तक किसी देश ने भी ग़रीबों का तिरस्कार कर उन्नति पाई है?

"आजकल के कहलानेवाले अमीर, जो व्यापार में रुपए कमा रहे हैं, वह किसके द्वारा पैदा करते हैं? जो कारख़ाने अमीरों को हजारों रुपए फ़ायदा पहुँचा रहे हैं, वह कारख़ाने किसके बल से चलते हैं? तुम्हारी रेलगाड़ी, जहाज़, बिजली के कारख़ाने साँचे के कारख़ाने, कोयला, सोना, चाँदी और लोहे की खानों का अस्तित्व किसके बल पर है? तुम्हारे गोदामों और मिलों में अपने लोहू को पानी बनाकर तुम अमीरों की तिजोरियों को कौन तर करता है? अपनी स्त्री और लड़कों की परवाह न कर तुम्हारी आज्ञा के साथ अपना भोग सुख त्यागने को कौन तत्पर रहा करते हैं? क्या इन ग़रीबों को संसार नहीं है? क्या उन्हें अपने स्त्री-पुत्रों की ममता नहीं है? क्या उन्हें ऐशो-आराम की इच्छा नहीं है? क्या उन्हें धनी होने की लालसा नहीं है? क्या उन्हें अपनी आत्मा प्रिय नहीं है? है, खूब है! जो अमीर चाहते हैं, वही ग़रीब भी चाहते हैं। फिर भी जब वे अपना सुख अमीरों के लिये त्यागते हैं, तब अमीर उनकी ज़रूरत क्यों न समझें? क्या ग़रीब समाज से बाहर हैं? घोड़े

सवारी के बाद घर लौटने पर नहलाए जाते हैं मले जाते हैं और उन्हें अच्छी ख़ूराक दी जाती है। उनके सुख के लिये नौकर रक्खा जाता है। तब क्या ये ग़रीब अनबोलते जानवरों से भी गए बीते हैं! अक्सर अमीर लोग शौक़ से कुत्ते पालते हैं, उसका प्यार कर उसे सुखी रखते हैं; लेकिन जिन ग़रीबों की मेहनत से वे अमीर बनते हैं; उनकी ओर कुत्ते जैसा प्यार भी नहीं दिखाते। तब क्या वे ग़रीबों को कुत्ते से भी बदतर समझते हैं? सच पूछिए, तो समाज का मुख्य अंग ग़रीब ही हैं। ग़रीब ही न हों, तो अमीर कहाँ से आवें? वैसे ही अमीरों के अस्तित्व से ग़रीब बढ़ते हैं। उनका इतना अपमान? इस अपमान को समाज कैसे सह सकता है?

"आपके कहने के मुताबिक़ अगर अमीर लोग ग़रीबों पर अत्याचार कर उनका सत्यानाश करना चाहें, फिर भी वे सब अच्छे ही रहेंगे। क्योंकि बिना पानी के निर्जल और निर्जन प्रदेश में पत्थरों के ढेर के बीच से जो छोटा-सा अंकुर निकलता है, वह टेढ़े-मेढे किसी तरह अपने को बढ़ाता ही है, अपनी उन्नति करते हुए पत्थरों के बीच से बाहर निकल आने की कोशिश करता ही है और अंत में वह निकल भी आता है। प्रकृति उसे मदद पहुँचाती है। जब किसी दीवार की दो ईंटों के बीच से अंखुआ निकलकर अपने को बड़ा पेड़ बना लेता है, तब ग़रीबों पर चाहे तुम कितना ही अत्याचार क्यों न करो, वे अपनी उन्नति अवश्य ही करेंगे। अमीर लोग उनसे जैसा बर्ताव करेंगे, उसका परिणाम अमीरों को ही भोगना पड़ेगा।

"समाज के ऐसे मुख्य अंग की रक्षा करने में ही अमीरी
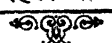
है; केवल रुपए रखने में नहीं। समाज के ऐसे अंग के सुधार में ही सुधार और सम्मान है; सुधार सुधार चीखने, या विदेशियों की नकल करते हुए बड़ाई पाने से नहीं। समाज के अंग की सड़ाहट दूर कर उसे स्थिर बनाने में ही सम्मान और प्रजा का नेतृत्व तथा जीवन-साफल्य मौजूद है; कुछ रायबहादुर, दीवान बहादुर, अथवा सर, नाइट, के. सी. आई. ई. की पूँछ लगाने से नहीं।

"पिताजी! यह तो हुई अमीरों की बात। अब यह विचार करना चाहिए, कि अपना क्या धर्म है। हम लोग मध्य श्रेणी के आदमी हैं। अपने कर्त्तव्य का क्षेत्र जितना बड़ा है, उतना ही कठिनाइयों से भरा है। अमीरों को ठिकाने लगाने और ग़रीबों की उन्नति के साथ-ही-साथ इसका भी ध्यान रखना चाहिए, कि कहीं ये मध्यम श्रेणी के बेचारे अयोग्य या मर्यादा हीन न हो जाएँ। ग़रीबों को समझाकर उनकी माँग पूरी करना, उनका नेतृत्व ग्रहणकर अमीरों को ठिकाने लाकर दोनों में भ्रातृ-भाव पैदा कराने की ज़रूरत है। अगर चाहें, तो अमीरों की मान-मर्य्यादा और गौरव से भी अपना गौरव उच्चकोटि का हो सकता है। अक़सर ऐसे काम के लिये समय की आवश्यकता होती है; समय के लिये केवल कार्य-दक्ष होने की देर है। पिताजी! मेरी बातों का आप चाहे जो मतलब लगावें, किंतु अभी समय है। इस समय को गँवाना मूर्खता है। मनुष्य एक बार समय से चूक जाता है, तो फिर उसे वह समय नहीं मिलता। क्या वजह है, कि आप भी इस कार्यक्षेत्र में उतरकर नेता न बनें? आपकी मदद से हम लोग अपने उद्देश्य को सहज ही सिद्ध कर सकते

हैं। पिताजी! आप यह नौकरी छोड़ दें! किसलिये आप यह निकृष्ट गुलामी कर रहे हैं? क्या धन-मद से मस्त इन अमीरों के लिये? ईश्वर ने अपने को धन दिया है; अगर वह सब धन खत्म भी हो जाय, तो क्या चिंता है। सबका पालन-कर्त्ता वह परमात्मा है।" इतना कहकर ऊषा मदनराय की ओर तीव्र और विनीत दृष्टि से देखने लगी।

कुछ देर बाद मदनराय ने कहा—"बेटी! तुम धन्य हो! मेरा भाग्य धन्य है, जो मैं तेरी-सी पुत्री का पिता हुआ। वर्षों से मेरे मन में भरे हुए विचारों को आज तूने ठिकाने लगा दिया। बेटी! आज से इस मदनराय को पहले का मदनराय न समझना। मेरे जीवन का पेज आज से बदल गया। मेरे घर की लक्ष्मी ऊषा! आज तेरे प्रकाश से मेरे हृदय में सूर्योदय का ऊषा काल प्रकट हुआ है।"

ऐसा कह उन्होंने ऊषा को अपनी छाती से लगा लिया और प्यार से उसके माथे को चूमा। गद्गद स्वर से ऊषा ने कहा—"और इस ऊषामय प्रदेश में ईश्वर की कृपा से शीघ्र ही अरुण की लालिमा छा जाएगी।"

सत्रहवाँ परिच्छेद

समाज-सेवकों की जय है।

ज्ञान को पुण्य कहते हैं।

अरुण की ओर देखकर गुलशन ने पूछा—"अभी तक ऊषा बहिन क्यों नहीं आईं?"

रणछोड़ ने जवाब दिया—" आती ही होंगी, वह समय से चूकनेवाली नहीं हैं।"

आज का दिन इन कार्यकर्त्ताओं की मंडली के लिये बड़े महत्व का है। पहले कहे हुए आठों आदमी आज मेहनत में लगे हुए हैं। म्युनिसिपैलिटी का चुनाव आज ही होनेवाला है। इसीलिये आज इस बात पर विचार करना है, कि चुनाव के समय क्या करना और इसके बाद किस प्रकार कार्य-क्रम रखना चाहिए। सब लोग आ गए हैं। सिर्फ ऊषा की राह देखी जा रही है। इसी समय ऊषा को साथ लिए हुए मदनराय भी वहाँ आ पहुँचे।

मदनराय को देखकर सब लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। किंतु ऊषा ने जोर से कहा—" पिताजी को देखकर आप लोग आश्चर्य में होंगे, लेकिन आप लोगों की कार्य-दक्षता और उच्च विचार से प्रसन्न होकर इन्होंने हम लोगों को सहायता देने का वचन दिया है।"

अरुण ने आनंद के आवेश में कहा—"यदि यह बात है, तो हम लोग उन्हें अपना नेता बनाते हैं।"

मदनराय—"भाई ! तुम मुझे जो सम्मान दे रहे हो, मैं उसके योग्य नहीं हूँ, अब तक तुम्हारे आंदोलन की बारीकी देखते हुए मैं देख सका हूँ, कि इस मंडल के संस्थापक तुम्हीं हो। इसलिये यह सम्मान तुम्हें ही मिलना चाहिए। इसलिये आज से तुम हमारे नेता हुए और हम सब लोग मिलकर तुम्हारे साथ काम करेंगे। तुम जो कहो, वह मैं करने को तैयार हूँ।"

मदनराय के इन निराभिमान भरे शब्दों को सुनकर सभी प्रसन्न हुए। इसके उपरांत कुछ तर्क-वितर्क के बाद इस मंडल का

नाम "भारत सेवक-समाज" रक्खा गया। उसी दिन सब लोगों के लिये काम भी नियुक्त कर दिया गया। पुरुष और स्त्रियों के प्रजा-हितैषी प्रतिनिधियों को वोट दिलाने का निश्चय हुआ। इस तरह से लोग घूम-घूमकर बिना किसी का दिल दुखाए कर्त्तव्य का ज्ञानोपदेश करने लगे। चुनाव का काम समाप्त होने पर दूसरे दिन से भावी कार्यक्रम पर अमल करने का निश्चय हुआ। इस कार्य-क्रम के ठीक करने में खूब तर्क-वितर्क हुआ। क्योंकि यह निश्चय करना था कि किस तरह और किस रास्ते पर काम करना चाहिए। आख़िरकार अरुण ने कहा:—

"आप लोगों का मूल उद्देश्य समाज-सेवा है। समाज-सेवा से ही हम लोग राष्ट्र-सेवा भी कर सकते हैं। अगर समाज की स्थिति उच्च हो, तो उसे राष्ट्र की ही उन्नति कहते हैं। परराष्ट्र की नकल कर उनके जैसा बन जाने में निष्फलता और निराशा ही है। आपको योरोपीय राज्य का प्रबंध भला जान पड़ता हो, तो उसे भी समझकर देखिए। उनके यहाँ पार्लमेंट है; यह सत्य है। प्रतिनिधित्व है; यह भी सत्य है। लेकिन वह प्रतिनिधित्व कैसा है? यह देश का प्रतिनिधित्व नहीं है। इस प्रबंध से चुनाव होने के समय लोगों का विचार मिल जाता है। वे लोग हित के विचारों का दिग्दर्शन करा कर लोगों को भुलावे में डाल देते हैं। आख़िर वह दिग्दर्शन-दिग्दर्शन ही रह जाता है, किंतु उसका स्पर्श कभी नहीं होता। जिधर बहुमत दिखाई देता है, उसी ओर प्रतिनिधि लोग भी झुक पड़ते हैं। आज का कंज़रवेटिवों का प्रतिनिधि कल लिबरलों का प्रतिनिधि बन जाता है। क्या इसी को लोग प्रतिनिधित्व कहते हैं? प्रतिनिधि लोग किसी तरफ़ का बहुमत देख झुका नहीं

करते। बल्कि प्रजा-हित के अपने विचारों को अमल में ला अंत तक अपने विचारों ही पर दृढ़ रहते हैं। आज का सत्यवादी कल को झूठा नहीं हो सकता। योरोप के अब के और तब के प्रतिनिधियों की ओर देखो। उनके विचार समय-समय पर बदलते ही रहते हैं। यह अवश्य ही हो सकता है, कि समय के अनुसार कभी कार्यक्रम को बदलना पड़े, किंतु उद्देश्य तो वही होना चाहिए। जिस नेता के विचार समय-समय पर बदलते जाते हैं, उसका हृदय चंचल होता है। पूर्ण दशा में पहुँचकर उनका विचार परिपक्व नहीं होता। उन लोगों की समाज-सेवा और राष्ट्र-सेवा का आँदोलन ऐसा है, जिसका पूरी तरह अभ्यास करने के बाद इसके पूर्ण कार्यक्रम को कठिन कर सकता है; हम लोगों को इतना अनुभव नहीं; किंतु हम लोग अपने अनुभवी नेताओं के विचारों को एकत्र कर अपने-अपने कार्यक्रम को बाँध सकते हैं। अपना कार्यक्रम चाहे जैसा हो, किंतु उसमें इतना तो होना ही चाहिए, कि चाहे जैसे राष्ट्रीय पक्ष में—चाहे उद्दंड हो या विनीत—किंतु उससे उनके मार्ग में हानि न पहुँचे। इसके बाद इसका भी विचार होना चाहिए, कि जो बल मिला है, उसे कैसे उपयोग में लाना चाहिए। ऐसा करने के लिये अपने मकान में जागृति लाने की आवश्यकता है। कदाचित् तुम लोग कह सकते हो, कि समाज जाग चुका है। इसे सच भी मान लिया जाय, पर कब तक? क्षण भर के लिये; जब तक उस जागृति की आग में आहुति देते रहो, तभी तक; बाद को कुछ नहीं। ऐसी जागृति से क्या मतलब? हम लोगों को तो उस जागृति की आग को धीरे-धीरे सुलगाना चाहिए। एक बार की भभकी आग को दावाग्नि की तरह बुझाना न चाहिए।

"हम लोग यदि ऐसी सच्ची जागृति कर सकें, तो फिर कोई अड़चन न रह जावे। हम लोगों का यह काम आप-ही-आप राष्ट्र को उन्नति के शिखर पर चढ़ा सकता है। समाज स्वराज्य की चाहे कैसी ही व्याख्या क्यों न करे, नेता लोग अपनी मनमानी ही व्याख्या क्यों न करें, विनीत या उद्दंड प्रकृति के लोग अपनी वृत्ति के अनुसार ही व्याख्या क्यों न करें या कार्यक्रम ठीक करें—अपने को तो अपनी ठीक की हुई राह पर जाना है। जैसे हिंदू, मुसलमान, सिख, जैन, पारसी, ईसाई इत्यादि भिन्न-भिन्न धर्मावलंबी अपने धर्म को श्रेष्ठ मानते हैं, और दूसरे धर्म की निंदा करते हैं, किंतु उन सब धर्मों का लक्ष एक सर्वशक्तिमान को प्राप्त करने के लिये है और उनकी राहें अलग-अलग हैं। नीति और कर्त्तव्य सबमें ही एक प्रकार के हैं। हर एक धर्म में नियम के साथ चलना और अपना कर्त्तव्य करना पड़ता है। ऐसा करनेवाला चाहे जिस धर्म का अनुयायी हो या किसी धर्म का भी अनुसरण करता हो, फिर भी उस मार्ग में उसका कल्याण ही होता है। वैसे ही अपना कार्यक्रम ऐसा होना चाहिए, कि वह हर एक धर्म के नेताओं के लिये सूत्र बन जावे। उस सूत्र से राष्ट्रोन्नति के मूलतत्व, जिसपर उसकी नीव की रचना होती है, उसको पहले अपने समाज को—समाज के हर एक अंग को समझाना चाहिए; उनका दुःख दूर कर, उन्हें सुखी नागरिक की स्थिति में लाना चाहिए। और अपने कर्त्तव्य को अपने साथ रख, उसे काम में लाना चाहिए। इतना किया जाए, तो स्वराज्य अपने हाथ में है। हम लोगों को किसी से स्वराज्य माँगना नहीं है, वैसे ही अपने को कोई स्वराज्य देनेवाला

भी नहीं है। ईश्वर ने मनुष्य को इंद्रियाँ दी हैं; मनुष्य उन इंद्रियों का उपयोग करना सीखे, तो वह उस काम से सुखी हो सकता है। किंतु आँख रहते वह उसे बंद कर ले, तो कुछ भी नहीं देख सकता। इसी तरह अपने कर्त्तव्य को समझकर बैठ रहने से भी कुछ नहीं होता। जैसे आँख खोलते ही संसार बड़ा दिखाई देता है, वैसे ही कर्त्तव्य को काम में लाने से स्वराज्य भी दिखाई देता है।"

जगन्नाथ ने पूछा—"तब स्वराज्य मिलने में कोई बाधा तो नहीं पड़ती ?"

अरुण—"नहीं, आँख खोलकर पीले शीशे में देखने से सब पीला ही दिखाई देता है और सफ़ेद शीशे में सफ़ेद। उसी प्रकार कर्त्तव्य को अमल में लाने के बाद उसके परिणाम रूपी दृष्टि काँच रूपी बुद्धि-दृष्टि की तरह होती है। किंतु कर्त्तव्य को पूरी तरह से समझने के लिये दूसरे किसी भी काँच का उपयोग नहीं हो सकता। जवाहिरात का गुण समझने के बाद मनुष्य काँच के टुकड़े की तरफ़ नहीं देख सकता।"

गुलशन ने पूछा—"लेकिन हमारे कामों में खलल डालने वाले लोग हमें लालच देते हैं और हमारे कितने ही भाई-बहिन लालच में पड़कर अपने फ़र्ज़ से गिर जाते हैं; उनके लिये क्या कहना चाहिए ?"

अरुण—"जो मनुष्य कर्त्तव्य को समझ लेता है, उसपर लोभ और लालच असर नहीं कर सकता। क्योंकि कर्त्तव्य-पालन का मज़ा और मिठास कुछ और ही है। कोई मनुष्य कर्त्तव्य से भ्रष्ट हो, तो ठीक समझ लेना चाहिए, कि वह आदमी अपने कर्त्तव्य को पूरी तरह नहीं समझ सका। कर्त्तव्य में अपने सब

सुखों से अधिक आनंद का मजा है। इसलिये जो इसका आनंद पा चुका है, जो जान चुका है, वह अपने कर्त्तव्य से विमुख हो ही नहीं सकता। किसी बालक को थोड़ी-सी मिठाई देकर नदी किनारे ले जाओ। बालकों को मिठाई बहुत प्यारी होती है, अपने लिये उसने जो मिठाई ली है, उसका एक छोटा टुकड़ा उसी बालक के हाथ से नदी के छिछले जल में फुदकती हुई मछलियों के सामने फेंकवाओ; मछलियाँ जब फुदकें, तो बालक को दिखाओ, वह इतना खुश हो जायगा, कि मछलियों का उछलना-कूदना देखने के लिये अपनी सारी मिठाई मछलियों को खिला देगा। इतना ही नहीं, बल्कि और मिठाई खिलाने के लिये जिद पकड़ेगा। इसका कारण? वह कर्त्तव्य न समझने पर भी दूसरे को खुश देख आप भी खुश होता है। तब मनुष्य अपना कर्त्तव्य समझने के बाद कैसे कर्त्तव्य-भ्रष्ट हो सकता है? समझे, तो कभी नहीं हो सकता। इसके बारे में चिंता करने से पहले पूरी तरह से कर्त्तव्य को समझना और समझा देना चाहिए।"

गुलशन-"अपने हृदय के वेग को न सँभाल सकी। वह बोल बैठी "आफ़री!"

"सत्य है!" मदनराय भी बोल उठे-"कर्त्तव्य समझने के बाद कोई भ्रष्ट नहीं हो सकता। यदि हो, तो उसके कर्त्तव्य की समझ में कमी है।"

विनोद ने पूछा-"लेकिन इस कर्त्तव्य के समझाने की कौनसी प्रणाली है?"

अरुण-"हाँ, सुनिए। अपने कर्त्तव्य को मुख्य मानकर अपढ़ अज्ञान और दुखी मनुष्यों से मिलिए। क्योंकि अपने को

सबसे पहले समाज के दुःख से सूखे हुए अंग के लिये ही काम करना है। समाज में कई स्थितियाँ है, लेकिन उनमें उच्च स्थिति को कैसे प्राप्त करना चाहिए? इसके बाद उन्हें यह समझाना चाहिए, कि नगर की प्रजा होने में तुम्हारा क्या हक़ है? पढ़ाने का प्रबंध करना, भ्रातृ-भाव का प्रेम उत्पन्न कराना, समाज की सड़ी कुरीतियों को दूर करना, राजा तथा प्रजा का कर्त्तव्य समझाना और वैसा ही वर्त्ताव कराना। बस, इतने ही में सब विषयों का समावेश हो जाता है। तुम्हें हर एक नेताओं का उद्देश्य यही दिखाई देगा। केवल प्रणाली अलग–अलग है। लेकिन हम लोगों को किसीके मत से मिलना नहीं है; सिर्फ़ काम करना है। वह भी हजारों व्याख्यानों से मन को उत्तेजित करने वाला काम नहीं—क्षण भर के लिये लोगों का हृदय धड़काने को नहीं; बल्कि इस तरह उनके मन को जीत लेना चाहिए, जिससे उनमें प्रेम बढ़े, आपस में प्रेम का वर्त्ताव और हृदय की मधुरता का विकास हो। इससे अपने दुस्साध्य कार्य भी साध्य हो जावेंगे। महात्मा गांधी का भी ऐसा ही उद्देश्य है; किंतु वह ऐसा है, जो सामान्य हृदय को उत्तेजित न करे, खूब सहन करे, भोग विलास को छोड़ने के उद्देश्य से प्रजा एक बारगी......न हो, इसलिये प्रजा के हृदय में भरे हुए "स्वराज्य" शब्द का प्रयोग किया है। सच पूछो, तो किसी भी शब्द के उपयोग की ज़रूरत नहीं है। किंतु इसका परिणाम स्वराज्य के लिये हो। जिसमें सबको अंकुश में रखने की राह निकाली न जायगी, जिसमें शातिंमय विनीत आदि शब्द लगाए न जायँ — उसके ही लिये यह आंदोनल खड़ा किया गया है।

मदनराय ने अपनी राय देते हुए कहा—"भैया अरुण! तुम्हारे ये शब्द अमूल्य हैं; हृदय से कभी भुलनेवाले ही नहीं।"

ऊषा—"अब सबको काम सौंपना चाहिए।"

अरुण—"इसकी कोई ज़रूरत नहीं; जिसे जो अच्छा लगे, वह उस काम को उठा ले। हम लोगों को हर आठवें दिन तो ज़रूर ही मिलना चाहिए और अपने आगे पड़ती हुई बाधाओं को दूर करते हुए काम करना चाहिए। यह काम तो लोगों की अपनी-अपनी शक्ति के ऊपर है। इसलिये मुझे इसमें कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं है।"

गुलशन—"यह तो ठीक है; अगर मैं अपने लिये कोई काम चुन लूँ, तो कोई हर्ज तो नहीं है?"

अरुण ने जवाब दिया—"नहीं, कोई हर्ज नहीं। लज्जा और कर्त्तव्य एक साथ नहीं रह सकता।"

मंडल बिखर गया। चुनाव के अड्डों की कुछ और ही हालत हो गई। लोग अपने ही प्रतिनिधियों को वोट दे रहे थे। स्वयंसेवक काम कर रहे थे। ज़रा भी झंझट या अशांति नहीं दिखाई देती थी। चुनाव का परिणाम प्रकट हुआ। समाज-सेवकों का ठीक किया हुआ प्रतिनिधि ही चुना गया; सेठ माधवलाल निष्फल हुए।

ऊषा ने मदनराय से कहा—"पिताजी! अब देखिए धनवानों का नशा कब तक टिकता है।"

मदनराय—"सभी की सदा एकसी हालत नहीं रहती।"

मदनराय के जवाब में ऊषा बोल उठी—"समाजसेवकों की जय है!"